'स्टार' के नए सैट में :

उर्वशी तथा अन्य श्रृंगारिक कविताएं : (दिनकर
तलखियां : (साहिर लुध्यानवी)
याद रही बातें : (अक्षय कुमार जैन)
आग की लकीर : (अमृताप्रीतम)
चाकर गाथा : (विमल मित्र)
घुन लगी बस्तियां : (जयवन्त दलवी)
कलंक : (शिवकुमार जोशी)
असमर्थ की यात्रा : (त्रि० गोपी चन्द्र)
कदम कदम पर खतरा (गुप्तदूत)
तूफान : (राजवंश)
दीन-दुनिया : (गुरुदत्त)
लाडली : (समीर)
अभिलाषा : (लोकदर्शी)
हंसना मना है : (आचार्य रजनीश)

चकर
गाथा
विमल मित्र

(बंगाली से अनूदित)

अनुवादिका : श्रीमती पुष्पा देवड़ा

प्रथम संस्करण : अप्रैल १९७४

प्रकाशक :

स्टार पब्लिकेशंज (प्रा.) लि०,

आसफअली रोड, नई दिल्ली-११०००१

मूल्य : तीन रुपये (3-00)

CHAAKAR GATHA : (Vimal Mitra)

मोहल्ले के लड़के हैं हम सब। हमारे मोहल्ले के सभी लोग हम लोगों की ही तरह मध्यवर्गीय हैं। सुना है कि पहले ऐसा नहीं था। यह भी सुना है कि उन दिनों, शायद यह स्थान खुला मैदान था। अब तो चारों तरफ मकान बन गये हैं; पर पहले इस जगह सिर्फ वही एक मकान था। किसी जमाने में संसार सेन नामक एक व्यक्ति ने खुली जगह में रहने का सुख भोगने के लिये ही यहां काफी बड़ी जगह लेकर यह मकान बनाया था। उन्हीं के वंशज हैं ये। पहले सिर्फ उसी एक घर में दुर्गा-पूजा हुआ करती थी। पूजा के दिनों में देवी प्रतिमा देखने के लिये हम लोग उस मकान के भीतर जाया करते थे। बड़े लोगों का मकान था। सच में ही बड़े लोगों का मकान था, यह बात आज भी मकान का आकार-प्रकार देखकर महसूस की जा सकती है। सामने बहुत ही बड़ा गेट है। उन दिनों इस गेट पर दरबान पहरा दिया करता था। शाम के वक्त सेन बाबू लोग चुन्नट वाली किनारी की सफेद झकझक धोती और कुरते में सजे-संवरे, तिरछी मांग निकाले, घोड़ागाड़ी में बैठकर हवाखोरी के लिये जाया करते। उन दिनों मकान में घुसने में हमें बहुत डर लगता था। शुरू-शुरू में जब हम लोग यहां रहने आये थे तब भी हम यही जानते थे कि वे लोग बड़े आदमी हैं। उनमें और हममें जमीन-आसमान का अन्तर है। उनका समाज हमसे अलग है। उस मकान में दरबान, नौकर-चाकर, मुनीम-गुमास्ते किसी भी वस्तु की कमी नहीं थी। इसकी कुछ-कुछ झलक दुर्गा-पूजा के वक्त हमें मिलती थी। कारीगरी का काम की हुई दीवारें थीं। मकान के सामने बाग था। बाग में

हंस, मोर, काका-तुआ आदि तरह-तरह के पक्षी थे। कहने का तात्पर्य, बड़े लोगों के घर में जो कुछ भी होना चाहिये वह सब था उनके यहां।

इसके बाद क्रमशः इस मकान का स्वरूप म्लान होने लगा। ज्यों-ज्यों दिन गुजरते गये, मकान अधिकाधिक पुराना नजर आने लगा। दीवारों पर अब रंग भी नहीं किया जाता था। घोड़ा मर जाने पर दूसरा घोड़ा भी नहीं खरीदा गया। नौकर-चाकरों के कपड़े भी अब मैले ही रहने लगे थे। दूसरी ओर, अगल-बगल के मकान अधिकाधिक ऊंचे होते जा रहे थे। रंग-बिरंगे बहुत से मकान, जिनकी खिड़कियों में रंगीन पर्दे झूलते, कमरों के अन्दर से रेडियो की आवाजें आती रहतीं, गैरेजों में नई मोटरें आतीं, आदि-आदि।

ठीक उन्हीं दिनों एक कांड हुआ।

कांड के एक दिन पहले हमने देखा था कि सेन परिवार के बड़े बाबू सदा की तरह सजे-संवरे घोड़ागाड़ी पर चढ़कर कहीं गये थे। उनके जाने के बाद टूटे हुए गेट को दरबान भूषणसिंह ने बंद कर दिया था। उसके बाद रात हुई, सेन बिल्डिंग के हर कमरे में सदा की तरह रोशनी भी हुई और फिर आधी रात के समय हमेशा की तरह पूरा मकान निस्तब्ध भी हो गया। जिस प्रकार और दिनों अंधेरे में डूबा यह मकान सांय-सांय करता-सा लगता था, उस दिन भी उसी प्रकार मानो निर्जीव-निष्प्राण-सा खड़ा मकान उसांसें भर रहा था।

पर सुबह नींद टूटते ही सभी दंग रह गये।

मकान के सामने पुलिस थी।

लाल पगड़ी वाले तीन-चार सिपाहियों और एक दारोगा को देख मकान के सामने भीड़ इकट्ठी हो गई।

"क्या हुआ, महाशय ?"

"हां भाई, क्या हुआ ?"

एक ने कहा, "मिस्टर, क्या नफरा नामक कोई व्यक्ति रहता है इस मकान में ?"

दूसरे ने कहा, "नफरा नहीं मिस्टर, उसका नाम नफर है।"

"एक ही बात है। चाहे चावल-भाजा कहो या मुड़ी। शायद उसी पट्ठे ने चोरी-वोरी की होगी।"

"अरे चोरी नहीं, डकैती कहो। डकैती हुए बिना इतनी पुलिस थोड़े ही आती।"

एक ने कहा, "नहीं जनाब, मैंने तो सुना है, किसी ने फांसी-वांसी लगा ली है।"

एकाएक देखा कि गुलमोहर अली घोड़ागाड़ी हांकता हुआ इधर ही चला आ रहा है। सभी ने रास्ता छोड़ दिया। गाड़ी में बड़े सेन बाबू बैठे थे। साथ जगतारण बाबू भी थे।

और गाड़ी की छत पर?

गाड़ी की छत पर गुलमोहर अली के बगल में पांव नीचे लटकाये बैठा है नफर! वाह, आज उसने भी चुन्नट की किनारी वाली धोती और सफेद झकाझक कुरता पहन कर तिरछी मांग निकाली है।

और···

लेकिन पुलिस के बारे में जो मैं कह रहा था न, वह सब बातें बाद में बताऊंगा। पहले 'नफर संकीर्तन' यानी चाकर-गाथा सुनिये।

इस संकीर्तन की भी एक गौरचंद्रिका (कीर्तन से पहले गौरांग महाप्रभु की वंदना) है।

एक सुबह करीब ग्यारह बजे सेन-परिवार के श्री सुवर्ण सेन अंगड़ाई लेते हुए नींद से जागे। ज्योंही उनकी आंखें खुलीं, उनका खास सेवक पांचू एक हाथ में बोतल और दूसरे हाथ में सिगरेट का पैकेट लिए हाजिर हुआ।

सुवर्ण बाबू ने हाथ बढ़ाते हुए कहा, "क्यों रे पांचू, आजकल नफर कहां रहता है? अब तो वह दिखाई ही नहीं पड़ता कभी—मर-वर गया है क्या?"

पांचू ने जवाब दिया, "जी, मैं अभी बुलाता हूं उसे।"

खास सेवक पांचू तौलिये को कंधे पर सम्हालता-सा दौड़ा। नफर की पुकार हुई है आज। इस समय बात करने की भी फुरसत नहीं है उसे। बाहर घुमावदार सीढ़ियां हैं। सीढ़ी के ठीक नीचे मर्दानखाना है। खास सेवक उसी सीढ़ी से आता-जाता है। यह सीढ़ी अपवित्र मानी जाती है। निषिद्ध चीजें इसी सीढ़ी के द्वारा ले जायी-लायी जाती हैं। जनानखाने की सीढ़ी रोज गंगाजल से धोई-पोंछी जाती है। उसी सीढ़ी से मांजी का पूजा का नैवेद्य आदि ले जाया जाता है, बहूजी के इष्टदेव की पूजा के लिए पुरोहितजी जाते-आते हैं, और भी बहुत-सी चीजें जाती हैं। नारायण शिला ले जायी जाती है, भगवान का प्रसाद जाता है। लेकिन सुवर्ण बाबू के लिए फाऊल-करी, बोतल आदि के लिए बाहर वाली सीढ़ी है। यह नियम शायद संसार सेन के समय से ही चला आ रहा है। इतने दिनों बाद भी इस विषय पर किसी ने भी अपना दिमाग नहीं खपाया कि ऐसा क्यों हो रहा है ? सब उसी प्रकार चल रहा है।

मर्दानखाने के बाहर ही पांचू की भेंट हरी जमादार से हुई।

लेकिन पांचू को उस वक्त बात करने की फुरसत कहां। कंधे पर पड़ा तौलिया सम्हालते हुए बोला, "मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है भाई, बड़े बाबू ने नफर को बुलाया है।"

"नफर को बुलाया है !" हरी जमादार झाड़ू लिये मर्दानखाने का आंगन बुहारने जा रहा था। पांचू की बात सुन अचरज-भरे स्वर में बोला, "नफर को बुलाया है !"

हरी जमादार के बहू-बेटे मकान के पिछवाड़े वाले बगीचे के ही एक कोने में रहते हैं। अस्तबल पार करने के बाद घोड़ों की लीद के ढेर एवं सड़े पानी की गढ़ई के पास उसकी कोठरी है। हरी अपनी कोठरी में गया और धुली हुई फतूही गले में डाल ली।

फतूही पहनते देख पत्नी ने पूछा, "धुली फतूही पहनकर कहां चले ?"

पर इस वक्त हरी जमादार को बात करने की फुरसत नहीं थी।

उसने सिर्फ इतना ही कहा, "नफर की पुकार हुई है। मैं चला।"

फूलमणी बर्तन मांज रही थी। ढेर सारे जूठे बर्तन। फूलमणी बाहर वाले बर्तन यानी फाऊल-कटलेट और अंडे आदि बनाये हुए बर्तन मांजा करती थी। उन बर्तनों को मांजकर फूलमणी बाहर ही रख देगी। क्योंकि वे बर्तन जनानखाने की किसी वस्तु से भी स्पर्श नहीं होने चाहिए। फूलमणी जनानखाने की सिन्धु को भी नहीं छू सकती। सिन्धु जनानखाने में मांजी के जूठे बर्तन मांजने वाली है।

बाहर वाली फूलमणी को अन्दर वाली सिन्धु अक्सर कहती है, "अरी, छूना नहीं मुझे। हटकर खड़ी हो। देख-देख, आखिर छूकर ही मानेगी क्या ?"

फूलमणी कहती, "मैंने कोरी साड़ी पहन रखी है। छू भी जाय तो क्या है। बर्तनों का काम खतम करके कोरी साड़ी पहनकर आई हूं, देख।"

"बस-बस, रहने दे। देखी तेरी कोरी साड़ी। तेरी जात-पांत भी कुछ है ?"

इस मकान में यानी संसार सेन की इस आदिम गृहस्थी में भीतर-बाहर बहुत से स्पृश्य-अस्पृश्य जीव वास करते हैं; उनका जीवन इतिहास किसी को भी मालूम नहीं है। सिर्फ बाहर के बर्तन ही नहीं, बाहर के मनुष्य भी भीतर नहीं जा पाते। बाहर दरवाजे पर ही खड़ी होकर फूलमणी आवाज लगाती, "अरी ओ सिन्धु! हाथ में थोड़ा तेल तो डाल।"

इस दरवाजे के उस पार जाने का उसे न तो अधिकार ही है, न साहस ही। इस पार यानी बाहर की तरफ के भीगे कपड़ों के छींटे तक भीतर नहीं पड़ सकते। बाहर की ओर बनी मछली का टुकड़ा अगर कौआ भीतर के आंगन में डाल दे तो भीतर का आंगन अशुद्ध हो जाता है। तब बड़े-बड़े कलशों में आंगन धोने के लिए गंगाजल मंगवाया जाता है। कलश-के-कलश गंगाजल आंगन में उंड़ेला जाता है। मांजी ऊपर बरा-

मदे में खड़ी आदेश देती रहती हैं। कहती हैं, "सिन्धु, उधर से तो जग
सूखी ही पड़ी है; उधर पानी डाल।"

पर आज फूलमणी सिन्धु को देखते ही बोली, "तुमने सुना सिन्धु, ब
बाबू ने शायद नफर को बुलवाया है ?"

"किसने कहा ? किससे सुना तुमने ?"

साथ ही सिन्धु के चेहरे का भाव भी एकाएक बदल गया।

फूलमणी ने कहा, "जमादार के मुंह से सुना है।"

सिन्धु ने पूछा, "जमादार से किसने कहा ?"

किसने कहा यह कोई नहीं जानता। बात कहां से आरम्भ हु
सबसे पहले किसने सुनी, यह कोई नहीं जानता। लेकिन पूरे मकान
हलचल मच गई इस खबर से। एक कान से दूसरे कान में होती हुई पृ
मकान में ही फैल गई।

"हां री, क्या बड़े बाबू ने सचमुच ही नफर को बुलवाया है ?"

"अरे भई, बड़े बाबू तो अभी तक सोकर ही नहीं उठे।"

गुलमुहर अली अस्तबल में चित पड़ा सो रहा था। बड़े बाबू
पिताजी के जमाने से उसका इस घर में काफी मान होता आया है
नियुक्त भी तभी से है वह। उस समय काला और बादामी दो घोड़े थे
जब मकान के बड़े फाटक से घोड़ागाड़ी निकलती तो आसपास के लो
दोनों घोड़ों को देख दांतों तले अंगुली दबाते। गुलमोहर अली जरी
काम की वर्दी पहन बड़ी शान से गाड़ी की छत पर बैठा गाड़ी चलाता

कई लोग तो उसकी शान देख उसे सलाम तक किया करते, "सला
अली साहब ! सलाम !"

उन दिनों गुलमोहर अली की स्थिति भी अच्छी थी ! अगर किसी
को मालिक से अपना काम निकलवाना होता तो गुलमोहर अली क
पकड़ना काफी होता। एक बार एक शिकारी मैना बेचने आया। ब
गुलमोहर अली ने उसको तीन सौ रुपये दिलवा दिये। मैना न तो कुछ
बोलना जानती थी और न ही अच्छी तरह उसके पंख निकले थे।

मालिक उस वक्त घोड़ागाड़ी में बैठने ही वाले थे कि शिकारी ने आकर कहा, "हुजूर, मैना खरीदेंगे ?"

उस समय मालिक के खास सेवक का नाम था पीरजादा। फालतू आदमी देख पीरजादा ने उसे डांटकर भगा देना चाहा।

शिकारी ने कहा, "अजी नीलगिरी पहाड़ की मैना है। आपकी तबीयत हरी कर देगी।"

पता नहीं मालिक को क्या सूझा। और कोई वक्त होता तो शायद भगा देते उसे। पर उस वक्त शायद मिजाज अच्छा था। उन्होंने मैना को गौर से देखा।

फिर बोले, "क्या कीमत है इसकी ? पांच रुपये ?"

उस समय मालिक के पीछे की ओर दुर्लभ बाबू खड़े थे। मालिक के साथ वह भी बगीचेवाली हवेली में जाया करते थे। उन्होंने मालिक की बात का उत्तर देते हुए कहा, "पांच रुपये ? आप भी क्या बात करते हैं हुजूर, पांच पैसे कीमत भी नहीं है इसकी। यह तो क्या, इसकी चौदह पीढ़ियों में भी मैना पैदा नहीं हुई होगी। बेशक यह शालिक (छोटी चिड़िया) है।"

बस मालिक को गुस्सा आ गया। बोले, "स्साला मुझे ठग रहा है ? निकल यहां से।"

शिकारी ने कहा, "नहीं हुजूर, असली मैना है, शालिक नहीं है।"

दुर्लभ बाबू ने कहा, "नहीं, यह शालिक पक्षी ही है। इसकी चौदह पीढ़ी शालिक हैं। स्साला, मुझे ही मैना और शालिक का भेद बता रहा है। मैं कहता हूं यह निश्चय ही शालिक है। शालिक नहीं हुई तो मैं अपने कान कटवा दूंगा, हुजूर।"

मालिक ने बगीचे जाना स्थगित कर दिया और बोले, "बुलाओ मोहरी बाबू को। मोहरी बाबू चाकदा के रहने वाले हैं, वह जरूर मैना और शालिक का फर्क समझते होंगे।"

मोहरी बाबू खजांचीखाने में काम कर रहे थे। मालिक का संदेशा

ा, कान में कलम खोंसकर दौड़ते-से आये।

मालिक ने कहा, "क्यों मोहरी बाबू, तुम्हारा तो घर चाकदा में है, तुम्हें तो जरूर मैना की अच्छी पहचान होगी?"

"जी, पहले तो थी पहचान।"

"देखो ज़रा यह मैना है कि नहीं?"

मोहरी बाबू ने आंखों पर से चश्मा हटा माथे पर चढ़ा लिया और अपना चेहरा पक्षी के करीब कर उसे गौर से देखने लगे। बेचारे का काम था हिसाब के खाते-बही देखने का। अदायगी रसीद देखकर उसे पक्की बही में लिख लेना, उसके बाद उसे खाते से जमा-बकाया अलग-अलग लिखकर अलग-अलग हिसाब रखना पड़ता था। आज चौबीस साल से अविराम यही कार्य करते आये हैं। उस व्यक्ति को आज एकाएक मालिक के हुक्म से पक्षी के असली-नकली होने की पहचान करनी पड़ेगी।

बहुत सोचने-समझने के बाद बोले, "जी, चाकदा में तो मैंने ऐसा पक्षी पहले कभी नहीं देखा। फिर भी लगता तो यह शालिक जैसा ही है।"

शिकारी ने कहा, "तो फिर मल्लिक बाबू के यहां ही दे आऊं, हुजूर? उन्होंने डेढ़ सौ कीमत ठहरायी थी, पर मैंने उन्हें यह दुर्लभ मैना दी नहीं।"

दुर्लभ बाबू ने पूछा, "कौन मल्लिक बाबू? कहां के मल्लिक बाबू?'

"जी, ग्वालटोली वाले मल्लिक बाबू।"

"ग्वालटोली के मल्लिक बाबू!" बात कांटे की तरह चुभी मालिक के कानों में। तो क्या ग्वालटोली के मल्लिक लोगों को मुझसे ज्याद परख है पक्षियों की?

फिर बोले, "ग्वालटोली के यह कौन से मल्लिक हैं, दुर्लभ? य किसकी बात कर रहा है?"

दुर्लभ ने कहा, "हुजूर, और किसकी बात कर रहा है? नूल

मल्लिक के बारे में कह रहा है। उसके आजकल पर निकल आये हैं ना।"

इतनी देर से गुलमोहर अली घोड़ागाड़ी की छत पर बैठा था। अब वह नीचे उतर आया और बोला, "हुजूर, यह बिलकुल असली मैना है।"

अब दुर्लभबाबू भी मैना के करीब खिसके। बोले, "दिखा तो रे, जरा अच्छी तरह देखूं।"

शिकारी ने पक्षी का पिंजरा दुर्लभ बाबू की नाक के सामने कर दिया।

दुर्लभ बाबू ने कहा, "उस तरफ से भी दिखा।"

इस तरफ, उस तरफ, चारों तरफ से अच्छी तरह जांचने-परखने के पश्चात् दुर्लभ बाबू भी बोले, "हां हुजूर, मुझे भी यह मैना-सी ही लगती है।"

मालिक ने कहा, "जरा अच्छी तरह देखकर बताओ, दुर्लभ। आखिर हमें नूलो मल्लिक के सामने क्या हार माननी पड़ेगी ?"

मोहरी बाबू भी तब तक बड़े ध्यान से मैना का मुआयना कर रहे थे। फिर बोले, "मुझसे ही गलती हो गई, मालिक ! यह असली मैना ही है।"

"सही कह रहे हो न ?"

दुर्लभ बाबू ने कहा, "हां हुजूर। शक की कोई गुंजाइश नहीं है। निःसंदेह यह मैना ही है। अब और ज्यादा देखने की जरूरत नहीं है।"

कर्त्ता बाबू यानी मालिक ने पूछा, "नूलो मल्लिक ने इसकी क्या कीमत लगायी थी ?"

शिकारी ने जवाब दिया, "हुजूर, उन्होंने तो डेढ़ सौ कहा था पर मैंने दी नहीं।"

"अच्छी बात है। मैं तुम्हें तीन सौ दूंगा। लेकिन यह बात नूलो मल्लिक से कहकर आना होगा कि मैंने तुमसे वही मैना तीन सौ में खरीदी है।"

दुर्लभ बाबू ने कहा, "हां, योंही छोड़ देना ठीक नहीं हुजूर, नूलो मल्लिक को सुना देना बहुत जरूरी है। आजकल उसके बहुत पर निकल आये हैं।"

और आखिर वह पक्षी खरीद ही लिया गया। पक्षी के लिये पिंजरा भी खरीदा गया। तीन सौ रुपयों में खरीदे उस पक्षी को अगल-बगल के दसों घरों के लोग देखने आये। पक्षी को देखकर चारों तरफ वाह-वाह हो गई। पर आखिर एक दिन चोरी पकड़ी गई। वह पक्षी मैना न होकर शालिक है यह किसी से भी छिपा नहीं रहा। एक दिन नौकर उसे नहला रहा था कि पंजों पर किया रंग धुल गया और असलियत प्रगट हो गई। आंखों के अगल-बगल हल्दी का दाग था। शरीर का काला रंग भी ऊपर से किया हुआ था। सारी चालाकी सामने आ गई।

सेन परिवार के इसी प्रकार के अनेक किस्से मशहूर हैं। इस वंश के किस्से, यानी संसार सेन के वंशधरों के किस्से, एक ही कहानी में खत्म होने वाले नहीं हैं। जिस प्रकार वारेन हेस्टिंग्स या फिर उससे भी पहले के अंग्रेजी-राज्य के उत्थान-पतन का एक इतिहास है उसी प्रकार सेन-ंश के उत्थान-पतन का भी एक इतिहास है। अब गुलमोहर अली का म कम हो गया है। अब बड़े बाबू अपने पिता की तरह रोज घूमने नहीं निकलते। रोज घूमने जाने लायक न तो उनका मिजाज ही रहा और न ही स्वास्थ्य। गुलमोहर अली खा-पीकर, सो-बैठकर ही अपना समय गुजारता है। अगर कभी मूड आया बड़े बाबू का तो हद-से-हद महीने में एक बार गुलमोहर अली को गाड़ी बाहर निकालने का हुक्म होता है। बड़े बाबू का खास सेवक पांचू आकर खबर दे जाता है "गुल-मोहर आज, बड़े बाबू घूमने जायेंगे।"

आखिर एक दिन वह बादामी रंग वाला घोड़ा मर गया।

बड़े मालिक का बहुत ही दुलारा घोड़ा था वह। बेचारा इलाज के अभाव में मर गया। अस्तबल में दाना खाते-खाते ही जमीन पर लुढ़क गया। बस तभी से गुलमोहर भी टूट-सा गया है।

अचानक अब्दुल सईस ने आकर कहा, "चाचा, बड़े बाबू नफर को बुला रहे हैं।"

"नफर को बुला रहे हैं?" गुलमोहर सोया पड़ा था, खबर सुन झटके से उठ बैठा। बोला, "नफर को बुलाया है? तुझे ठीक मालूम है न?"

"हां चाचा, खास सेवक कहकर गया है।"

अब तो सचमुच ही गुलमोहर उठ खड़ा हुआ। नफर को बड़े बाबू ने बुलाया है। अब घोड़े को तैयार करना होगा। अपने लिये जरी वाली पोशाक निकालनी होगी। घोड़े की मालिश-वालिश करनी होगी। घोड़े की पूंछ पर इत्र मलना होगा। उसकी पीठ पर काठी चढ़ानी होगी। बेलगड़िया क्या यहीं है?

खास सेवक नीचे उतरा ही था कि मोहरी बाबू से भेंट हो गई। मोहरी बाबू एक दिन चाकदा से यहां आये थे और काम की तलाश में सड़कों पर मारे-मारे घूमा करते थे। कई दिनों तो उन्होंने सड़क पर लगे नल से सिर्फ पानी पीकर गुजारे थे। उन दिनों सर्वप्रथम बड़े मालिक ने ही चेतला में धान की मिल बैठायी थी। उनकी देखादेखी ही ग्वाल-टोली के नूलो मल्लिक के पिता माताल मल्लिक ने भी धान की मिल बैठाने का निश्चय किया। बड़े मालिक के धान की मिल से रात-दिन चावल निकलते थे। वही चावल आस-पास के सभी पड़ोसी देशों में भेजे जाते थे; जैसे जावा, सुमात्रा, फिलिपाईन, मलाया और चीन आदि। सभी चावल-खोर देश थे।

बड़े मालिक का आदेश था, "औसतन मन पर चार आने लाभ रखकर सारा चावल बेच दो।"

चेतला के गंगा-किनारे से ही हजारों नावें चावलों से भरकर भिन्न-भिन्न देशों को जाती थीं। फलस्वरूप घाट के किनारे चाय-पकौड़ी की दुकानें खुल गईं। मजदूर लोग सुबह आते और धान को दीवालों से घिरे मैदान में सूखने को डाल देते। बहुत विशाल मैदान था। इतना विशाल

कि इस छोर पर खड़े व्यक्ति को दूसरा छोर दिखाई नहीं पड़ता था। इसके बाद शाम के समय धान को इकट्ठा कर ढंकना पड़ता था। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो पाला लगने एवं कबूतरों के खा जाने का डर बना रहता। धान सूख जाने के बाद मशीन में डाला जाता और धड़धड़ मशीन चालू हो जाती। मशीन की आवाज़ से मिल की इमारत थरथराती रहती थी। मालिक वहां अक्सर आते, पर आते एक घंटे के लिये ही। इस एक घंटे के समय में ही ऐसा कुछ भी नहीं बचता जो उनकी नज़र से न गुजरता हो।

मोहरी बाबू ने उस मिल को बैठते भी देखा है और उठते भी देखा है।

बड़े मालिक ने अपना समस्त जीवन तो बागवाली हवेली में आने-जाने में ही व्यतीत किया था, केवल जिन्दगी के आखिरी दिनों में डेढ़ वर्ष के लिए काशीवास किया था और वहां से आने के बाद वह अधिक दिन जीवित नहीं रहे।

आजकल कालीदास बाबू खजांची हैं। चावल की मिल के विषय में वह विशेष कुछ नहीं जानते, लेकिन मोहरी बाबू सब कुछ जानते हैं। वह कालीदास बाबू से कहते, "सुनिये खजांची बाबू, आखिर उस शालिक का क्या हुआ ?"

"रहने दो भाई तुम्हारी शालिक पक्षी की कहानी। मैं हिसाब के जोड़-तोड़ में मरा जा रहा हूं और तुम्हें शालिक के किस्से की पड़ी है। तुम्हारा क्या, तुम्हें तो बस जमा का हिसाब ही रखना पड़ता है। खर्च तो मुझे ही निपटाना पड़ता है।"

और फिर सामने से बही हटाकर कालीदास बाबू आवाज़ देते, "हरिचरण, एक गिलास चाय तो दे, भाई !"

मकान के बाहर सड़क है। अब उसने गली का रूप ले लिया है। पहले मुख्य सड़क थी यह। तब लोग-बाग, गाड़ी-घोड़े सभी इसी रास्ते से आते-जाते थे। बड़े बाबू की शादी तक भी यही एकमात्र सड़क थी।

सड़क छोटी हो गई तो क्या हुआ, अब यहां एक चाय की दुकान भी है और कपड़े-लत्ते धुलाने की भी एक दुकान है। जब चाहो, बाहर निकलो और चाय ले आओ। कालीदास बाबू ने चाय के गिलास को मुंह से लगाया और फिर मुंह बिगाड़ते हुए बोले, "यह क्या चाय लाया है रे हरिचरण, चाय है या उबला पानी ?"

मोहरी बाबू कहते हैं, "बड़े मालिक के जमाने में हमें चाय खरीदकर नहीं पीनी पड़ती थी, खजांची बाबू।"

कालीदास बाबू उन्हें फिर चुप करवा देते। कहते, "तुम चुप रहो तो थोड़ी देर। सोना कब सस्ता था ये किस्से रहने दो। इस वक्त तो खर्च की वही दो मुझे।"

कुछ देर बाद पूछते हैं, "पिछले महीने बड़े बाबू ने कितने रुपये उठाये हैं, ज़रा देखकर बताओ तो ?"

मोहरी बाबू हिसाब देकर थोड़ी देर के लिए चावल मिल गये थे। लौटते वक्त रास्ते में बड़े बाबू के खास सेवक पांचू से भेंट हुई; और फिर तो वह दौड़ते-हांफते सीधे खजांची बाबू के पास ही आकर रुके।

"खजांची बाबू, सर्वनाश हो गया !"

"क्या हुआ ?" कालीदास बाबू ने खर्च-खाते पर से नज़रें हटाकर पूछा।

"बड़े बाबू ने नफर को याद किया है।"

"फिर नफर को याद किया है !" कालीदास बाबू खबर पाकर मानो मुरझा गये। महीने की चौबीस तारीख होने को आई, पावना आदि कुछ भी प्राप्त नहीं हुए अभी तक, तिस पर नफर को याद किया है !

मर्दानखाने की घुमावदार सीढ़ियों के नीचे दरबानों की कोठरी है। पुराने खाते-वही वहीं ताख में यहां-वहां ठुसे पड़े थे। करीब आठ-दस पीढ़ियों के जमा-खर्च और बकाया हिसाब के खाते-वही। कितनी जमींदारी थी तथा कितनी धान-मिलें एवं अन्य सभी कारोबार के हिसाब-

किताब के वही-खाते इधर-उधर संदूकों पर पड़े हैं। साल-पर-साल गुजरते चले जा रहे हैं और उन पर धूल की परतें जमती जा रही हैं। उस कमरे में रहनेवाले दरबान सुबह सोकर उठते, फिर दोपहर को सोते और रात को वहां बैठकर रामायण पढ़ते। उन लोगों को गुमान भी नहीं था कि कितनी पीढ़ियों के हिसाब-किताब के वही-खाते वहां धूल की तहों में दबे पड़े हैं, जबकि उन्हें तैयार करते समय कितना परिश्रम करना पड़ा होगा। कितना अनमोल धन रहे होंगे यही वही-खाते। कई पीढ़ियों के पाप एवं पुण्य की फसल थे ये वही-खाते। यह फसल एक दिन में संचित नहीं हुई थी। सदियों के दिन-रात की विलासिता, अनासक्ति, प्रेम, वितृष्णा आदि संचित है इनमें। आज इनके बारे में न तो किसीको पता है और न ही कोई कल्पना कर सकता है। भविष्य में भी कोई नहीं जान पायेगा इन सबके बारे में।

जानता है सिर्फ एक व्यक्ति।

मांजी कहती हैं, "कौन बहू ?"

बहू इस परिवार के बड़े बाबू की पत्नी है। बहू इन सबको बहुत अच्छी तरह समझती-जानती है। जब रात बहुत गहरी हो जाती है और सड़कों पर ट्राम-बसों की आवाजें क्रमशः धीमी होती हुई बिल्कुल बन्द हो जाती हैं, तब भी उन्हें नींद नहीं आती। वह आवाज देतीं, "सौरभि, जा देखकर आ तो, जगत्तारण बाबू गये या अभी तक बैठे हैं ?"

जगत्तारण बाबू बड़े मालिक के जमाने के व्यक्ति हैं। दिन में एटर्नी के ऑफिस में नौकरी करते हैं। बड़े मालिक भी उन्हें अक्सर याद किया करते थे। उन्हें लिवा लाने के लिए घोड़ागाड़ी भेज दिया करते थे। जगत्तारण बाबू नये कपड़े पहनकर कुरते पर इत्र मलकर आते और मसनद के सहारे टिक जाते। पहले तो रोज़ आया करते थे। गुलमोहर अली उन्हें नियम से लाने जाया करता था। गाड़ी सीधी कंवली टोला ले जाकर ही रोकता वह। जगत्तारण बाबू को सजने-संवरने में जितनी देर लगती उतनी देर गाड़ी वहीं खड़ी रहती।

अब बड़े बाबू के पास भी आते-जाते हैं वह।

आते ही खबर सुनाते, "आज फिर एक मुवक्किल फंस गया।"

बड़े बाबू तकिये का सहारा ले आराम से बैठ जाते और पूछते, "अब कौन-सा मुवक्किल फंस गया भई मास्टर ?"

जगत्तारण बाबू हाईकोर्ट एरिया में घूमते-फिरते रहते थे, अतः ताजा-से-ताजा खबर उन्हें पता रहती थी। मुवक्किल के फंसने से उन्हें हार्दिक खुशी होती थी। जिस दिन कोई भी मुवक्किल नहीं फंसता उस दिन वे बहुत उखड़े-उखड़े-से रहते थे। पर ज्योंही कोई मुवक्किल फंसता वे झट आकर यह खबर बड़े बाबू को सुना जाते। भैंस के सींग से बनी पक्षी की चोंच जैसी डिजाइन के हत्थेवाली एक छड़ी हमेशा उनके हाथ में रहती थी। आते ही सबसे पहला प्रश्न यही पूछते, "मां जननी कैसी हैं, बड़े बाबू ?"

बड़े बाबू कहते, "अच्छी हैं।"

"खुशी की बात है, बड़े बाबू। ऐसी पुण्यात्माओं की कुशलता से ही पृथ्वी का अस्तित्व कायम है। वरना तो जिस तीव्र गति से इस पृथ्वी पर पाप का बोझ बढ़ रहा है···खैर, आज की खबर सुनी आपने ?"

बड़े बाबू ने पूछा, "कैसी खबर ?"

"आपने सुनी ही नहीं ? हाईकोर्ट एरिया में तो इस खबर से भूचाल-सा आया हुआ है। साताल मल्लिक का पोता है न, अजी नूलो मल्लिक का बेटा, कार्तिक मल्लिक, वह फंस गया।"

"क्यों ?"

जगत्तारणबाबू ने बताया, "काबुलिया को हुण्डी लिख कर दी थी, आज सूद और असली सबकी डिग्री हो गयी, अब सिर नहीं उठा सकता बेटा !"

कलकत्ता में एक-न-एक कप्तान रोज़ फंस ही जाता और जगत्तारण

वावू उनकी फेहरिस्त वड़े वावू को वहुत रस लेकर सुनाया करते । पहले वह रोज़ आते थे पर इधर वड़े वावू के खून का जोश कुछ ठंडा पड़ गया है, कुछ-न-कुछ बीमारी लगी ही रहती है, अतः कभी-कभार आ भी जाते हैं तो वैसी वैठक नहीं जमती जैसी पहले जमा करती थी। अकेले जगत्तारणवावू वैठक को कव-तक जिन्दा रख सकते हैं।

जाते-जाते कह जाते, "क्या वात है वड़े वावू, वहुत दिनों से कुछ मौज-मजा नहीं हुआ ! अव आपने शुक्राचार्य वनने की ठान ली है क्या?"

वड़े वावू तकिया छोड़ कर उठते हुए कहते, "अरे नहीं, इतने दिनों यह वात ध्यान में ही नहीं थी, मास्टर। मुझे तो भई, याद दिलाने की आवश्यकता है।"

"तो फिर कल ही हो जाय। इस वहाने ह्विस्की पीने का मौका मिल जाता था वह भी धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है।"

अपने घर लौटने से पहले जगत्तारण वावू मर्दानखाने के सामने थोड़ी देर ठहरते। आंगन में तेल का लैंप तव भी टिमटिमाता-सा जल रहा था। दरवानों के कमरों के सामने वैठा भूपणसिंह सत्तू खा रहा था। जगत्तारणवावू ने उसके पास जाकर कहा, "कौन, भूषण ! भैया, एक वार भीतर खवर भिजवानी है, मां जननी की चरण-रज लेनी है मुझे।"

भूपणसिंह सीधा मां जननी तक नहीं पहुंच सकता। वह पयमन्त को खवर देता है। पयमन्त मर्दानखाने का नौकर है। वह जनानखाने की सिन्धु को खवर देता है। सिन्धु मां-जननी से कहती है, "मास्टर जी आपकी चरण-रज लेने आये हैं, मां।"

इतना सव होने के वाद जगत्तारण वावू पयमन्त को साथ ले जनानखाने में जाकर सीढ़ी के निचले छोर पर खड़े हो जाते। सिन्धु घूंघट निकाले सीढ़ी में खड़ी हो जाती। उसकी ओर देखकर जगत्तारण वावू ऊपर की ओर देखते और कहते, "मां-जननी, आपका वेटा आपके चरणों की धूल लेने आया है। इधर कुछ दिनों से मैं आ नहीं सका, अतः अपराध क्षमा करें, मां।"

सिन्धु मां-जननी की तरफ से कहती, "लड़के को ज़रा समझाइये, मास्टर साहब।"

"जी, मां-जननी, मैं तो रोज़ यही काम करता हूं। मुझे कहना नहीं पड़ेगा। मैं उनसे हमेशा यही कहता रहता हूं कि, यह सब अण्ट-शंट बेकार चीजें खाना-पीना क्या अच्छी बात है ? समझीं न मां, पहले से तो बहुत समझदार हो गया है। मां-जननी, आप निश्चित रहें। देखिये न, समझाते-समझाते मैंने उसे कितना सीधा कर लिया है।"

सिन्धु पूछती, "लड़के का मिजाज आज कैसा है ?"

"आज तो मिजाज अच्छा ही दिखा, मां-जननी। आज तो गीता भी पढ़ायी है मैंने। चतुर्दश अध्याय तक पूरी हो गयी है। फिर भी थोड़ा समय लगेगा, इतने दिनों की आदत है, चस्का है, छूटता-सा-छूटेगा। और फिर मैं जब मौजूद हूं तो आप रत्ती भर चिन्ता न करें। अब देखियेगा, मेरे हाथ का जस और आपका आशीर्वाद क्या रंग लाता है।"

सिन्धु कहती, "मेरा एक ही तो लड़का है। आप ही शुरू से उसके गुरु रहे हैं। आपका भरोसा है मुझे।"

जगत्तारण बाबू कहते, "मुझ पर भरोसा रख कर आप निश्चित रहिये, मां-जननी। बस आपकी चरण-रज मुझे बराबर मिलती रहे, फिर मैं किसी से नहीं डरता। जरा-सी चरण-धूलि देकर मुझे कृतार्थ करें मां, तो मैं घर जाऊं।"

चांदी की कटोरी में थोड़ी-सी चरण-रज लाकर सिन्धु सामने कर देती है। जगत्तारण बाबू कटोरी की सारी धूल अपने सिर पर लगाकर कटोरी को एक बार जीभ से छुआते हैं। इसके बाद जहां खड़े हैं वहीं सीढ़ी पर अपना सिर टिकाकर मां-जननी को नमस्कार कर अपने घर चले जाते हैं।

यह घटना बहुत दिनों की ही नहीं, बहुत वर्षों पहले की है। बहुत वर्षों से ही मां-जननी की चरण-धूलि प्राप्त करने का जगत्तारण बाबू का सिलसिला चला आ रहा है। यह चरण-रज की ही महिमा है जो जग-

त्तारण बाबू ने कंवली टोला में अपना मकान बना लिया है। कार खरी ली है। ऑफिस उसी गाड़ी में जाते हैं। लेकिन बड़े बाबू के पास जब आना होता है तब गुलमोहर अली बड़े बाबू की घोड़ागाड़ी ले जाता है।

पिछली रात को भी आये थे जगत्तारण बाबू। हमेशा की तरह बड़े बाबू के कमरे में बैठ मुवक्किल के फंसने की बात भी की। हमेशा की ही तरह मां-जननी के चरणों की धूल ले सिर से लगाकर एवं प्रणाम करके भी गये थे। उस वक्त तक किसी को अन्दाजा तक नहीं हुआ कि सुबह-सुबह नफर की पुकार होगी। स्वयं नफर ने भी कल्पना नहीं की थी।

खास सेवक पांचू मर्दानखाने में पंहुचा ही था कि भूषण सिंह से उसकी टक्कर हो गई। भूषण सिंह बहुत पुराना नौकर है। बड़े मालिक के जमाने में वह बन्दूक लिये पहरा दिया करता था। अब बन्दूक नहीं रही इसीलिये वह तेज़ भी नहीं रहा। अब वह बूढ़ा भी हो गया है। परात भर आटा सिर पर रखे जा रहा था भूषण सिंह। ज़रा-सी कसर रह गई नहीं तो आटा भी गिरता और थाली भी जाती। क्योंकि खास सेवक मुर्गी-मछली आदि सब कुछ छूता है।

"अन्धा है क्या ? दिखता नहीं ?"

कुछ और कड़वी बात कही जाती तो हाथापाई की नौबत आ जाती। ऐसा कई बार हो भी चुका है। यद्यपि अब भूषण सिंह में वह तेज़ नहीं रहा पर गुस्सा बहुत है। गुस्सा आने पर उसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहता।

"अच्छा ! मुझे आंखें दिखाता है !"

उस जमाने में तो बड़े मालिक तक भूषण सिंह को खिझाने से कतराते थे। वह हमेशा कहा करते, "उसे खिझाया मत करो तुम लोग, वह असली मैथिल ब्राह्मण है, गुस्सा इसकी नाक पर ही बैठा रहता है। इसके अलावा, सदर गेट पर गुस्सैल व्यक्ति का मौजूद रहना अच्छा ही है।"

"तुम्हारे गुस्से से डरे मेरा ठेंगा।" कहकर पाँचू ने अंगूठा दिखा

भूषण सिंह को। भूषण सिंह को इतनी जोर का गुस्सा आया कि अगर उस को जरा-सा और उकसाया जाता तो आटे से भरा थाल पांचू के सिर पर ही देकर मारता। अगर थाली दे मारता तो पांचू की खैर नहीं रहती। वह खून से लथपथ हो वहीं गिर पड़ता, और उसके वाद नफर को बुलाना भी संभव नहीं होता।

भूषण सिंह ने फिर कहा, "अंधा है क्या ? दिखता नहीं ?"

"तुझे वाद में समझूंगा। अभी मुझे टाईम नहीं है, वड़े वावू ने नफर को बुलवाया है। अगर इतना आवश्यक कार्य न होता तो तुझे अभी वता देता।"

"नफर को वुलवाया है !" भूषण सिंह जैसा गुस्सैल मैथिल ब्राह्मण भी यह खवर सुनकर स्तब्ध रह गया।

रसोईघर में सुवह से ही दुनिया भर का काम रहता है। काम तो हर वक्त ही रहता है। रसोईघर के धुएं के जालों और काली हुई चार-दीवारी के भीतर जिन लोगों का जीवन व्यतीत होता रहा है उन लोगों को पता भी नहीं चलता कि सूर्य कव उदय हुआ और कव अस्त हुआ। वड़े वावू को विविध व्यंजनों का शौक है। खजांची वावू ही वाजार का भी काम करते हैं। बाजार का सारा खर्च उन्हीं के हाथों होता है। कालीदास वावू के वाजार में आते ही मछुआरी से लेकर आलू-परवल वाले तक पुकार उठते, "आइये वावू, इधर आइये। आज धलेश्वरी की रोहू मछली लायी हूं।"

आलूवाला कहता, "वहुत वढ़िया नैनीताल के आलू हैं वावू, आधा मन ले जाइये।"

वाजार कर चुकने के वाद कुछ सौदा तो जाता उनके अपने घर और कुछ इस घर में आता। सौदा आते ही भंडार-घर की नौकरानियां अनाज एवं साग-सब्जी को बीनने-काटने का काम शुरू कर देतीं। मालकिन-मांजी के लिये आलू वड़े-वड़े काटने पड़ते हैं। वहू यानी वड़े वावू की पत्नी के लिये तेल में भूनकर आलू की सब्जी तथा वड़े वावू के

आलू तलने पड़ते हैं। बड़े वाबू के लिए दाल, रसेदार सब्जी चाहे ब
या न वने, लेकिन तले हुए आलू अवश्य वनने चाहियें।

वड़े वावू जव जीमने वैठते हैं तो कहते हैं, पेंचो (पांचू), थोड़े आ
और लाने को कह ज़रा।"

और खास सेवक पांचू रसोई की तरफ दौड़ पड़ता है। रसोईघ
भी क्या सामने ही है! मर्दानखाने के आंगन में एक वहुत वड़ा नी
का पेड़ है। उस नीम गाछ को पार कर खिड़की में से रसोईघर क
दरवाजा दीखता है। पांचू दौड़ता हुआ वहीं पहुंचता है और कुछ दूर
पर ही ठिठककर आवाज़ लगाता है, "शिशु की मां, वड़े वावू ने आ
भाजा मंगवाये हैं। आलू दे दो।"

उस वक्त मंगला ने चूल्हे पर देगची चढायी थी मां-जननी के शौव
की सब्जियां वनाने के लिये। शिशु की मां से कहकर सरसों पिसवा ली
थी। सुवह फरमाइश आयी थी, सिन्धु आकर कह गई थी। इतनी देर
हो गई पर अभी तक सब्जियों का सिलसिला नहीं मिटा।

मंगला शिशु की मां से कहती, "शिशु की मां, खजांची खाने से
अभी तक कोई खाना खाने कैसे नहीं आया ?"

सवसे पहले खजांचीघर के लोग भोजन करते। एक लाइन में वैठ-
कर रोज़ तीन व्यक्ति जीमते थे। परोसने का काम शिशु की मां किया
करती थी। उसके वाद मर्दानखाने में जो लोग दो-चार दिनों के लिये
आये हुए रहते वे लोग खाते। मिल से मैनेजर वावू करीव वारह वजे
आते। उन्हें भी खाना परोसना पड़ता। जिस प्रकार अलग-अलग लोगों
को खाना खिलाने का काम था उसी प्रकार वार-वार खाना वनाने का
भी काम था। मांजी और वहूरानी के पसंद का खाना सिन्धु थालियों में
परसकर दो तल्ले ले जाती। सवसे अंत में वड़े वावू खाना खाते।

"अरे, क्या वड़े वावू नहाने गये ?"

तो खवर आती कि बड़े वावू तेल मालिश करवा रहे हैं। दाढ़ी
वनवाना, तेल मालिश करवाना, वदन दववाना आदि इतने काम निप-

टाते-निपटाते आखिर देर हो जानी स्वाभाविक ही है। इतनी देर मंगला को चौके में इंतज़ार करना पड़ता है। जब तक बड़े बाबू न खा चुकें, मंगला भी नहीं खा सकती। हां, भूख अवश्य लग आती होगी। लेकिन भूख लगी है या नहीं यह सोचने तक की उसे फुरसत नहीं रहती। शिशु की मां तैयारी करती रहती और मंगला खाना पकाती रहती।

"अरी, आज नफर कहां है? खाना नहीं खाया उसने?"

शिशु की मां जवाब देती, "मैं तो बाज आयी भई भूतों को बुला-बुलाकर खिलाने से। जिसको गरज हो वह आकर स्वयं खा ले।"

"अरी, ज़रा देख न, बेचारा खाये बिना रह जायेगा।"

कभी-कभी तो वह खाना खाने आता ही नहीं था। बुलाने के लिये भेजने पर उसका कहीं पता नहीं लगता था। इस मकान में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को कुछ-न-कुछ काम रहता है। खजांची बाबू से लेकर चाकदा के मोहरी बाबू, भूषण सिंह, फूलमणी, सिन्धु, मांजी, बहूरानी, हरी जमादार आदि सभी सुबह से चरखी की तरह घूमते रहते। लेकिन कौन क्या काम करता है यह हिसाब देना बड़ा मुश्किल काम है। हां, व्यस्त सभी रहते थे। सुबह से ही क्यों, एक पहर रात बाकी रहती तभी चूल्हों में आग जल जाती। उस वक्त कोई भी सोकर नहीं उठा होता लेकिन आंगन के नल के नीचे मंगला नहा चुकी होती उस वक्त। विधवा है बेचारी। उसे तो पूजा-पाठ के लिये बस इसी वक्त ज़रा-सा समय मिल पाता है। घर भर के लोग खाना खाते लेकिन इतना खाना बना कौन रहा है यह जानकारी किसी को नहीं है।

शिशु की मां मसाला पीसती-पीसती पूछती, "दीदी, अम्बूवाची (सौर आषाढ़ के ता० ७ से ६ तक तीन दिन, इस समय ब्राह्मण तथा उच्च वर्ण की विधवायें व्रत रखती हैं) कब है?"

कौन जाने किसकी अम्बूवाची है। कब अम्बूवाची है, कब सूर्यग्रहण है, कब पूर्णिमा या फिर कब एकादशी है, इन सबकी ब्योरेवार जानकारी रखने की रसोईघर के लोगों को ज़रा भी फुरसत नहीं है। चार चूल्हे हैं—

रसोईघर में जो हर वक्त यूं धूं-धूं जलते रहते हैं मानो रावण की चित
जल रही हो। वह चिता तो बुझने का नाम ही नहीं लेती। पता नहीं
कब संसार सेन के जमाने से यह चिता जल रही है जो कभी ठंडी नहीं
होती। एक चूल्हे पर चावल चढ़ाते ही दूसरे पर दाल चढ़ानी पड़ती
दाल चढ़ाते-न-चढ़ाते तीसरा चूल्हा धधकने लग जाता। उस पर भात
चढ़ाने पड़ते। रोज़ एक मन चावलों के भात बनते थे। एक पतीला भात
चूल्हे से उतरा नहीं और दूसरा चढ़ाते जाओ। एक किस्म के चावल
थोड़े ही बनते थे, दस किस्म के चावल बनते थे यानी उन्नीस-इक्कीस
का फर्क रहता चावल की किस्मों में। बाहर के लोगों के लिये लाल मोटे
चावल बनते। बहू एवं मांजी के लिये महीन-सफेद चावल बनते। और
बड़े बाबू के लिये बासमति चावल बनते। इसी प्रकार दाल भी एक
प्रकार की नहीं बनती थी। कोई मूंग की खाता, कोई मसूर की खाता,
कोई बिना छिलके की उड़द की पसंद करता तो कोई खेसारी की दाल
पसंद करता था। जितने लोग उतनी ही तरह का खाना।

खाना खाते-खाते मोहरी बाबू कहते, "बड़ी की सब्जी देना, शिशु
की मां!"

मंगला कहती, "बड़ी की सब्जी कटोरी में मैंने निकालकर रख दी
है। बस इतनी ही है यह मत ले जाना, नफर खायेगा।"

"लेकिन मोहरी बाबू मांग जो रहे हैं?"

"वह मांग रहे हैं इसका यह मतलब थोड़े ही है कि अन्य लोग नहीं
खायेंगे! तुम्हारी बहस के कारण इधर दूध उफन गया है। भई, मैं
तुमसे बहस नहीं कर सकती।"

प्रत्येक दिन लोगों की फरमाइशें पूरी करते-करते मंगला और शिशु
की मां दोनों थक कर चूर हो जातीं। ऊपर से उलाहने ये कि, "शिशु
की मां, आज दाल में नमक कम है।" कोई कहता, "आज कलिया में
इतनी मिर्च क्यों डाली?"

सभी शिकायतें रसोईघर के भीतर तक नहीं पहुंचती थीं। कई

और खाना बनाते वक्त अनजाने में ही मंगला का हाथ भी जल जाता। शिशु की मां पूछती, "हाय राम, हाथ पर इतना बड़ा छाला कैसे हो गया, दीदी ?"

मंगला को पता ही नहीं रहता। अतः वह भी चौंककर कहती, "अरी हां !"

"ज़रा सा चूना और नारियल का तेल लगा दूं ?"

लेकिन सेन परिवार के रसोईघर में तेल-चूना लगाने का अवकाश कहां ! सुबह-सुबह उठकर चूल्हों में आग जला कर जब खाना बनाना शुरू कर दिया जाता है उसके बाद तो जैसे काम की बाढ़ ही आ जाती है और फिर रात के बारह बजे तक मंगला को जैसे सांस लेने तक का समय नहीं मिलता।

शिशु की मां बीच-बीच में बाहर की कुछ खबरें सुना जाती है, "दीदी, सुना तुमने, जनानखाने की सिन्धु ने क्या कांड किया है ?"

उस वक्त मंगला दाल में छौंक लगा रही थी। वह कहती है, "बात का वक्त नहीं, लाड़ो। तू यह बता, तूने मसाला पीसा या नहीं ? इधर कोयले जल-जलकर राख हुए जा रहे हैं।"

लेकिन शिशु की मां पर मंगला की बात का कोई असर नहीं होता। वह उसी लहजे में कहे जाती है, "पेट के लिए अगर नौकरानी बनना पड़े इसका मतलब यह तो नहीं कि जिन्दगी बेच दी, छिनाल का हृदय देख-कर सच कहती हूं दीदी, घृणा होती है।"

मंगला तब भी उसकी बातों पर ज़रा भी ध्यान नहीं देती।

वह सिर्फ इतना पूछती, "मांजी की तबीयत ख़राब थी न, अब कैसी है री ?"

शिशु की मां कहती, "आज तो बड़े वैद्यजी आये थे। दरवाज़े के सामने उनकी गाड़ी खड़ी थी।"

मंगला कहती, "ज़रा सा वक्त भी नहीं मिलता कि एक बार जाकर देख आऊं।"

"तुम्हें काम करते कितने दिन हुए, दीदी ?"

मंगला का काम क्या आज का है ? ठीक-ठीक याद ही नही कि कितने साल हो गये। उस वार जब वड़े मालिक तीर्थ करने ग गये थे, तव मंगला ने पहली वार इस घर में प्रवेश किया था। वह नीम का पेड़ उस वक्त वच्चा था। उसकी टहनियां हाथ ज़ ऊंचे करते ही छू सकते थे। इस मकान की नौकरानियों ने कित वर्षों तक इसकी टहनियां तोड़कर ही दतौन किया है। पेड़ के नी जगह भी कच्ची ही थी उन दिनों। कच्चे आंगन में लौकी की दो ल थीं। वे लताएं रसोईघर की छत पर चढ़ गई थीं। पहली वार ल भी लगीं लेकिन एक दिन वन्दरों ने सभी फूल एवं कच्ची लौकी खा ड और लता को छिन्न-भिन्न कर दिया। उन दिनों शिशु की मां ने काम शुरू नहीं किया था। और नफर वहुत छोटा था। गोरा खूव चेहरा था उसका।

लोग-वाग उससे पूछते, "हां रे, तेरी मां कौन है ? वाप कौन है

उन दिनों मोहरी वावू खजांची का काम करते थे। वे कहते, छोकरे, नाच तो, नाच देखें।"

मैं वृन्दा······"

"अच्छा बेटा, अब तेरा गाना तो बन्द कर और यह बता, तेरा बाप कौन है ? तू किसका बेटा है ?"

"सरकार महाशय, उसकी लुढ़कनी देखी है आपने कभी ? अच्छा देखिये। ऐ, ज़रा लुढ़कनी खा तो।"

नफर को ज्यादा नहीं कहना पड़ता। हुक्म की तामील करने में मानो उसे हार्दिक खुशी होती थी। और अन्त में सामने पहुंचकर वह हाथ फैला देता। कहता, "एक पैसा दीजिये न, सरकार बाबू।"

कालीदास बाबू ज़ोर से डांटते, "भाग-भाग यहां से। पैसा क्यों ? क्या करेगा पैसों का ?"

"लैमनचूस खाऊंगा।"

"दूर हो, भाग यहां से। पहनने को तो चिथड़े नहीं और लैमनचूस खायेगा। भाग जा।"

और सचमुच ही मुनीम-गुमास्ते उसे वहां से भगा देते। उस वह छोटा था। कोई कितना ही बुरा-भला कहे, चाहे उसे वहां ही दे, नफर को कोई फर्क नहीं पड़ता। वह फिर से दरवान कमरे में जाकर खड़ा हो जाता। कमरे में भूषण सिंह दंड-बैठक था और हूं···हूं···स्वर निकाल रहा था गले से। वह उसे कुछ करते देखता और फिर कहता, "मैं भी ऐसे कर सकता हूं। दि तुम लोग देखोगे ?"

बिना उत्तर की आशा किये वह नंगा हो जात में दंड-बैठक शुरू कर देता। वह ठीक से कर नहीं किये जाता। फूलमणी की नजर पड़ जाती तो पूछ क्या हुए ? नंगा क्यों घूम रहा है ?"

पर नफर की कमर में भला कपड़े टिकते कर जांघिया-वांघिया पहना भी देता था तो मोहल्ले उस रास्ते घूमता-फिरता था। कर्त्ता

"तुम्हें काम करते कितने दिन हुए, दीदी ?"

मंगला का काम क्या आज का है ? ठीक-ठीक याद ही नहीं उसे कि कितने साल हो गये। उस वार जब बड़े मालिक तीर्थ करने काशी गये थे, तब मंगला ने पहली बार इस घर में प्रवेश किया था। वह बूढ़ा नीम का पेड़ उस वक्त बच्चा था। उसकी टहनियां हाथ ज़रा से ऊंचे करते ही छू सकते थे। इस मकान की नौकरानियों ने कितने ही वर्षों तक इसकी टहनियां तोड़कर ही दतौन किया है। पेड़ के नीचे की जगह भी कच्ची ही थी उन दिनों। कच्चे आंगन में लौकी की दो लताएं थीं। वे लताएं रसोईघर की छत पर चढ़ गई थीं। पहली बार लौकी भी लगीं लेकिन एक दिन बन्दरों ने सभी फूल एवं कच्ची लौकी खा डाली और लता को छिन्न-भिन्न कर दिया। उन दिनों शिशु की मां ने यहां काम शुरू नहीं किया था। और नफर बहुत छोटा था। गोरा खूबसूरत चेहरा था उसका।

लोग-बाग उससे पूछते, "हां रे, तेरी मां कौन है ? बाप कौन है ?"

उन दिनों मोहरी बाबू खजांची का काम करते थे। वे कहते, "ऐ छोकरे, नाच तो, नाच देखें।"

कालीदास बाबू सरकारी कार्य से ध्यान हटाकर चेहरा ऊपर उठाते और कहते, "अब फिर उसे क्यों छेड़ रहे हैं ?"

लेकिन नफर तब तक नाचना शुरू कर देता है। नाच का मतलब, थई नाचना।

"अच्छा, अब गाना भी गा ज़रा।"

कालीदास बाबू मुंह बिगाड़कर कहते, "समझ में नहीं आता काम वक्त आप उसे गाने के लिए क्यों कहते हैं ?"

लेकिन नफर ने नाचना बंद करके गाना शुरू कर दिया था,

"मैं वृन्दावन में
वन - वन में
वंशी बजाऊंगा

"अच्छी बात है, भाई। चलो, आज गाना ही सुना जाय।"

कभी मुसाहिबों में से कोई कहता, "बड़े मालिक, नूलो मल्लिक ने आज सफेद कबूतरों का जोड़ा खरीदा है।"

मालिक भी उनकी हर बात में हां कहते जाते और कहते, "अच्छा! तो हम भी खरीदेंगे।"

यानी मुसाहिबों की इच्छानुसार नौका-विहार भी होता, मोहरबाई का गाना भी सुना जाता और सफेद कबूतरों का जोड़ा भी खरीदा जाता। कहने का तात्पर्य यह कि बड़े मालिक के मुसाहिबों का कोई भी शौक अपूर्ण नहीं रहता। अगर वे कहीं से सुन आते कि अच्छी नस्ल के ढोर-ढंगर आये हैं तो उन्हें यथाशीघ्र खरीदे जाने में भी कसर नहीं रहती।

एक दिन बड़े मालिक के कमरे में मालकिन गईं और बोलीं, "आपको पता है, गुरुदेव पधारे हैं?"

बड़े मालिक ने जवाब दिया, "नहीं तो! मुझे तो किसी ने बताया ही नहीं!"

मालकिन ने कहा, "गुरुदेव कह रहे थे कि चूड़ामणि-जोग में तीर्थ भ्रमण करने से सारे पाप धुल जाते हैं। चलेंगे न?"

"पाप!"

बड़े मालिक ने बहुत ही आश्चर्य सहित 'पाप' शब्द दोहराया, क्योंकि पाप क्या होता है या किसे कहते हैं, इससे वे सर्वथा अनभिज्ञ थे। अपनी जानकारी में तो उन्होंने आज तक कोई पाप नहीं किया था। आज तक किसी को किसी तरह का नुकसान नहीं पहुंचाया था। किसी की आंखों से एक बूंद आंसू नहीं बहाया था। जो उन पर आश्रित रहते उन्हें वे भरपेट खाना खिलाते थे। कोई एक प्राणी भी यह दावा नहीं कर सकता कि संसार सेन के घर आकर अपमानित होकर लौटा हो। दान-पुण्य भी करते ही रहते हैं। पुरी धाम से पंडे चन्दा लेने आते हैं तो लौटते समय उनके चेहरे पर आत्म-तुष्टि की मुस्कान छायी रहती। घर

में रोज़ भगवान की सेवा-पूजा होती ही है। भगवान का भोग नियम-पूर्वक बनता है। प्रसाद लगाया जाता है। दुर्गा-पूजा के दिनों में हर एक व्यक्ति को कपड़े दिये जाते थे। हर व्यक्ति को पंगत में बैठाकर भर पेट खाना खिलाया जाता था। इन सभी बातों का सरकारी खाते में पूर्ण विवरण भी है। इन सबके अलावा आज कहीं अकाल है तो कल बाढ़ से लोग पीड़ित हैं; इन सबके लिये भी बड़े मालिक यथेष्ट चंदा दिया करते थे। किसी को भी निराश नहीं लौटाते थे। इतना सब करते रहने के बावजूद पाप कैसा ?

मालकिन ने कहा, "आप भी कैसी बातें करते हैं ? मनुष्य जीवित है यह भी एक बहुत बड़ा पाप है। कितने ही पाप हम कर चुके हैं।"

आखिर तीर्थयात्रा करना तय हो ही गया। तीर्थवास ! हां, तीर्थ-वास करना तय हुआ। क्योंकि, गुरुदेव ने समझाया था कि ब्राह्मण को दान देने पर एक जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं, लेकिन सपत्नीक तीर्थ-वास करने से जन्म-जन्मान्तरों के पाप नष्ट हो जाते हैं। और यह सच भी है, हम जीवित रहते हैं इसीलिये न जाने कितने पाप करते हैं। मन के अनजाने में हम न जाने कितनी हत्याएं करते रहे हैं। कितना झूठ बोलते हैं, कितना अनाचार करते रहते हैं।

गुरुदेव अपना उपदेश देकर, बतौर प्रणामी के सवा पांच सौ रुपये, कपड़े, बर्तन, खड़ाऊं आदि बहुत सी वस्तुएं साथ लेकर वापस चले गये। वे काशीधाम पहुंचकर इन लोगों के रहने आदि का सारा इंतजाम करके रखेंगे। इधर जोड़-तोड़ ज़ोरों से होने लगी।

उन दिनों जगत्तारण बाबू एटर्नीशिप पढ़ रहे थे। उन्होंने बड़े मालिक से कहा, "साहब आपने हमारी आदत बिगाड़ दी है, अतः आपके जाने के बाद हमारा ज़रा भी मन नहीं लगेगा।"

बड़े मालिक ने कहा, "तुम लोग भी साथ चलो न !"

दुलालबिहारी बाबू ने जवाब दिया, "अगर हम साथ चले तो इधर का काम कौन सम्हालेगा !"

उन दिनों बड़े मालिक के बागवाली हवेली में लड़कियों की बहुत कद्र की जाती थी। पुतलीमाला की मां के लिए नौकरानी है, नौकर है, दरबान है, यानी किसी बात की कमी नहीं है उसके आराम एवं सुरक्षा की दृष्टि से। लेकिन फिर भी बड़े मालिक का मन आशंकित रहता है। नूलो मल्लिक नया-नया बड़ा आदमी बना है। पता नहीं वह कब क्या गुल खिला दे। कहीं पुतली की मां को खुश करके उसे हथिया बैठा तो फिर न घर के रहेंगे न घाट के। बेहतर यही है कि जगत्तारण बाबू यहीं रहें। दुलालबिहारी बाबू को भी यहीं रहने दें। दोनों टाइम ये दोनों व्यक्ति पारी-पारी पहरा देंगे वहां।

बड़े मालिक ने जगत्तारण बाबू से कहा, "आप रोज शाम को वहां जाया करियेगा, और दुलालबिहारी बाबू को तो खास काम रहता नहीं, अतः वे सुबह के वक्त जाया करेंगे। आप दोनों वहां की कड़ी निगरानी रखेंगे ताकि बाहर की मक्खी भी उधर पर न मार सके।"

लेकिन उस बार बड़े मालिक काशी क्या गये, मंगला की तो किस्मत ही फूट गई!

तब तक मंगला इस घर में आई नहीं थी। इस घर के मालिक काशीवास करने जायेंगे उसकी तैयारी चल रही थी। कौन-कौन साथ जायेगा तथा कौन नहीं इसकी लिस्ट बन रही थी। क्या-क्या वहां जायेगा तथा कब जायेगा आदि बहुत सी बातों पर विचार किया जा रहा था। इन सभी तैयारियों में दो महीने का समय लगा। उस समय भूषण सिंह की उम्र कम थी। कालीदास बाबू अभी युवा ही थे। यानी ये सभी बातें बहुत दिनों पहले की हैं। मोहरी बाबू के बाल उन दिनों काले ही थे। जगत्तारण बाबू ने भी उस वक्त तक एटर्नीशिप पास नहीं की थी। और आज दुलालबिहारी बाबू भी तो नहीं रहे। एक दिन अचानक बड़े मालिक की बागवाली हवेली के पोखर में उनका शव पड़ा मिला था। लाश फूलकर गुब्बारे जैसी हो गई थी। थाना पुलिस जो कुछ करना था सब कुछ किया गया। और इस बात की पूर्ण सूचना बड़े

मालिक को काशीधाम में पत्र द्वारा दी गई थी। लेकिन उस पत्र का कोई जवाब नहीं आया था। उन दिनों मालकिन बीमार चल रही थीं।

घर पर खबर आ चुकी थी कि बड़े मालिक कलकत्ता लौटने के लिए उत्सुक हैं लेकिन मालकिन की हालत को देखते हुए आने का कोई उपाय नहीं है। उनके साथ सरकार, खास सेवक, पीरज़ादा दरबान, कुंजवाला आदि बहुत से लोग गये हैं। और भी एक प्राणी गया है, और वह है मंगला।

पता ही नहीं कि सर्वप्रथम मंगला को इस घर में लाया कौन था। बड़े मालिक तीर्थवास के लिए काशीधाम जायेंगे अतः एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो खाना-वाना बना सके। साथ ही शर्त यह कि ब्राह्मण की लड़की हो वह, काम करने में, मेहनत करने में सबसे आगे हो तथा अधिक बात न करे।

मंगला आयी तो मालकिन ने उसे सिर से पैर तक घूर कर देखा फिर बोलीं, "तू काम कर सकेगी ?"

"काम नहीं करूंगी तो खाऊंगी कहां से मां जी। विधवा औरत को भला बैठकर कौन खिलायेगा।"

"मेरे कहने का मतलब है कि खाना-वाना बनाने का काम कभी किया है ?"

"अभी तक तो मां जी ज़रूरत नहीं पड़ी थी काम करने की, पर अब करूंगी।"

उस समय भला उसकी उम्र भी क्या थी। हद-से-हद तेरह या चौदह साल। इतनी सी उम्र में ही किस्मत फूट गई ! रूप तो ऐसा कि रूप न कहकर आग कहें तो बेहतर होगा।

मालकिन बोलीं, "नहीं बाबा, नहीं। तुमसे नहीं होगा हमारा काम। तुम्हारा रूप सब कुछ ले डूबेगा। ले, यह पांच रुपये ले, और विदा हो और कोई घर देख।"

मंगला मालकिन के कदमों में लोट गई और रोती-रोती बो...

"मेरा रूप आग से झुलसाकर मुझे काली-बदसूरत बना दो मां, वह तकलीफ भी मैं खुशी-खुशी सहन कर लूंगी लेकिन पेट की आग नहीं सही जाती मुझसे।"

"बेटी, अगर ऐसी ही भूख लगती है जिसे तू नहीं सह सकती तो गंगा में डूब तो सकती थी ? गंगा में तेरे ही लिये तो पानी की कमी हुई नहीं !"

"अगर ऐसा कर सकती तो आज आपके कदमों में क्यों लोटती ?"

उस समय जो नौकरानी थी उसका नाम था कुंजबाला। बाद में वह मर गई।

उसने मंगला से कहा था, "मालिक के सामने भूल से भी मत निकलना, हरामजादी। अगर कभी भूल से भी उनके सामने पड़ गई तो सिर पर आरी रखकर खड़ी को चीर दूंगी।"

आखिर यही तय हुआ। सिर्फ मुंह बंद किये काम करेगी वह। रात-दिन काम करते रहने पर भी एक मिनट के लिये बेज़ार नहीं होगी। कुंजबाला ने कहा था, "रहने दीजिये मालकिन। पड़ी रहेगी। रात दिन काम करेगी। मालिक की नजरों के सामने न आने देने की जिम्मेदारी मैं लेती हूं।"

उसी कुंजबाला के साथ सफेद थान की धोती पहनकर मंगला घोड़ा-गाड़ी में जा बैठी। पहले नौकर-नौकरानियां जायेंगे। फिर सरकार, मुनीम-गुमास्ते और सबके पीछे मालिक और मालकिन। इसलिए कि उन्हें वहां पहुंचकर यानी काशी पहुंचकर कोई असुविधा न हो।

कभी-कभी शिशु की मां पुरानी चर्चा छेड़ती थी। पूछती, "तुम तो काशी गई थी न, दीदी !"

चार चूल्हे मंगला के सामने पूर्ण रूप से भरे धधकते रहते, अतः मंगला के लिए सभी बातों का जवाब देना संभव नहीं होता। वह पूरी बात ही नहीं सुन पाती थी। अगर पूरी बात सुनने में ध्यान लगाये तो होगा यही कि, दाल में नमक डालना भूल जायेगी या भात का मांड

निकालने में हाथ जला बैठेगी।

सबसे पहले खजाँचीखाने के लोग खाना खायेंगे। वे लोग तीन हैं जो साथ ही पंगत में बैठकर भोजन किया करते थे। यद्यपि उन्हें परसती थी शिशु की मां पर सब तयारी तो मंगला को ही करनी पड़ती थी। उसके अलावा, धान मिल के दो व्यक्ति यहां आये हैं जो आज खाना भी यहीं खायेंगे। मिल के मैनेजर साहब बारह बजे आते हैं और भात खाना पसन्द करेंगे। मालकिन और बहूजी के लिए दोपहर को खाना भिजवाना पड़ता है। उनके खाने में देर करके सिन्धु की खरी-खोटी भला कौन सुने। और फिर सबके खाने-पीने के बाद जब भोजन का समय समाप्त हो जाता है वह वक्त है बड़े बाबू के भोजन का। और सबसे अंत में जब भोजन का समय समाप्त हो जाता है और चाय का समय हो जाता है तब मंगला खाना खाने बैठती है।

"दीदी, तुमने तो अपनी जिन्दगी का लक्ष्य पूर्ण कर लिया है। काशीवास कर लिया, बाबा विश्वनाथ के दर्शन हो चुके लेकिन हमारे पाप कैसे मिटेंगे, तुम्हीं बताओ! तुम तो रोज ही बाबा विश्वनाथ के दर्शन किया करती होगी?"

मंगला उसकी बात का कोई जवाब नहीं देती। बल्कि पूछती, "अरी, आज नफर खाना खाने कैसे नहीं आया?"

शिशु की मां कहती, "उंह, नफर आज यहां क्यों खायेगा भला। वह तो बड़े बाबू के साथ बाग वाली हवेली गया है। वहां वह कलिया-कोफ्ता खायेगा। जगत्तारण बाबू भी गये हैं। आज नफर तुम्हारे कुम्हड़े की सब्जी खाने आयेगा भला!"

मंगला ने एक थाली भर भात नफर के लिए छिपाकर रख दिये थे। उस पर दो टुकड़े मछली भी। थोड़ी-सी कुम्हड़े की सब्जी भी रखी थी। गरम चावल खाना उसकी किस्मत में नहीं लिखा था पर अगर निकालकर अलग से चूल्हे के पास रख देगी तो खाने को तो मिल जायेंगे उसे। वैसे चूल्हे के पास रखने से कुछ गरम भी रहते हैं। जिस दिन नफर को

:-बार बुलाकर खाना खिलाती है उस दिन आंगन में उकड़ू बैठकर बिना चबाये ही भात निगलता जाता है।
कभी-कभी वह पूछता, "शिशु की मां, दाल किसने बनाई है आज?"
शिशु की मां कहती, "और कौन बनाता, महाराजिन दीदी ने ही ायी है।"
नफर व्यंग्य में कहता, "वाह, क्या दाल बनायी है! मां कसम, ामें डूबकर तैरने को जी चाहता है!"
शिशु की मां को गुस्सा आता। वह कहती, "जो मिला है उसे चुप-ाप खाना है तो खाओ वरना उठो यहां से।"
"क्या बोली?" नफर एकदम से बिफर उठता।
पर शिशु की मां भला उससे क्यों डरने लगी। वह उसी प्रकार ोहराती, "हां-हां, खाना हो तो खाओ वरना यहां से भाग जाओ। सोईघर में आकर आंख दिखाने की ज़रूरत नहीं है।"
अब तो नफर को और भी गुस्सा आता। कहता, "ज़रा बुलाओ तो ुम्हारी दीदी को, बड़े बाबू से कहकर जब महीना बन्द करवा दूंगा तो इसी शख्स के पांव पकड़ने पड़ेंगे।"
शिशु की मां आंचल को कमर के चारों ओर कसकर लड़ने पर आमादा हो जाती। वह वहीं से पुकारती, "दीदी, ज़रा चिमटा लेकर तो आना, मार-मारकर इसका मुंह तोड़ दूं।"
"क्या···, इतनी हिम्मत!"
जूठे हाथ लिए ही नफर उठ खड़ा होता। वह पांव पटककर कहता, खाने को देती हो इसलिए मुझे गुलाम समझ रखा है क्या? मछली यों नहीं दी मुझे? मज़ाक समझ रखा है? बढ़ो, हिम्मत है तो आगे ढ़ो, घूंसा मारकर सिर ही फोड़ दूंगा आज। तुम लोगों ने मुझे पहचाना हीं है अभी तक।"
"गीदड़ की मौत आई है।" कहकर शिशु की मां खुद ही भागकर ींक झाड़ू उठा लाई। नफर भी कम नहीं था। उसने शिशु की मां के

वाल मुट्ठी में भरकर जोर से खींच दिये।

बस फिर क्या था ! शिशु की मां दहाड़ें मारकर रोने लगी, "... रे, गुन्डे ने मुझे मार डाला रे !"

उसकी चीख-पुकार सुनकर रसोईघर में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। खजांचीखाने से मोहरी वावू दौड़े आये, वाहर की फूलमणी, अस्तवल से कूदता-फांदता भागा आया गुलमोहर अली और दोतल्ला के वरामदे में से सिन्धु झांकने लगीं। सभी पूछ रहे थे, "क्या हुआ, शिशु की मां ?"

नफर उसी तरह दहाड़ रहा था, "आज तो इस औरत का खून करके ही दम लूंगा। खून करूंगा, जरूर करूंगा।"

मोहरी वावू वहुत डर गये। हरी जमादार सामने ही खड़ा था, उससे वोले, "हरी, ज़रा जल्दी से जाकर भूषण सिंह को तो वुला ला।"

सारे के सारे लोग जवकि उत्तेजित हो चीख रहे थे उस वक्त रसोईघर के कोने में मंगला स्तब्ध खड़ी थी। वह ऐसी सुन्न हो गई थ जैसे वाहर-भीतर उसे किसी तरह की भी चेतना न हो।

नफर चिल्ला रहा था, "आओ, मेरे साथ लड़ोगी तो आओ। कौन लड़ेगा मेरे साथ। आओ, आओ ! तुम्हारी महाराजिन दीदी को वुलाओ वुलाओ, मछली चुराकर रखती है। मज़ाक समझ रखा है क्या ?"

तव तक भूषण सिंह भी आ पहुंचा। आते ही उसने नफर की पी पर एक लाठी मारी और वोला, "ऐ उल्लू, निकलो यहां से।"

और उसी क्षण मानो किसी मंत्र ने अपना असर दिखाया हो, ए ही प्रहार में नफर फन फैलाए सांप के वदले केंचुआ वन गया। अटक अटककर वोला, "यह देखो, भूषण सिंह। महाराजिन दीदी भात के सा मछली नहीं देती हैं। वड़े वावू से कहकर नौकरी से निकलवा दो।"

"अरे, तुम तो इधर आओ पहले।"

कहकर नफर की गर्दन पकड़ भूषण सिंह ने उसे मर्दानखाने आंगन, में धकेल दिया। नफर ने असहाय दृष्टि से सवकी ओर दे

फिर बोला, "तुमने सिर्फ मेरी ही गलती देखी, और वह मुझे मछली नहीं देती जो।"

इतना कह सहानुभूति पाने की गरज से उसने फिर भूषण सिंह की ओर देखा। लेकिन उसके इस कृत्य पर उस वक्त सभी हँस रहे थे। मोहरी बाबू बोले, "तुम्हें मछली क्यों मिलेगी ? ज़रा बताओ तो कि तुम काम क्या करते हो ?"

नफर ने कहा, "काम की बात छोड़िये। काम नहीं करता क्या इसीलिए मुझे खाना भी नहीं दिया जायेगा ? मैं यहां कुछ भी नहीं हूं।"

अब गुलमोहर अली भी हँसने लगा। बोला, "नफर, तू पागल हो गया है।"

मोहरी बाबू बोले, "तू कौन है, ज़रा हमें भी तो बता। किस नवाब का दीवान है तू ?"

"कहे देता हूं, भूख के समय मजाक मत करिये। मुझे हँसी-ठट्ठा इस वक्त ज़रा भी पसन्द नहीं।"

"हां, तुम्हें क्यों अच्छा लगने लगा। तुम्हें तो बस बैठे-बैठे खाना अच्छा लगता है। ठीक है न ?"

नफर बोला, "मैं बैठा-बैठा खाता हूं ?"

"अगर यह सच नहीं तो फिर तुम क्या काम करते हो, हम भी तो सुनें ? दिन भर तो तुम पड़े सोते रहते हो।"

नफर बोला, "तो फिर काम दीजिये न हमें। कोई काम नहीं हो तो मैं क्या करूं ? सोऊं नहीं तो क्या बैठा आप लोगों की दाढ़ी में हाथ फिराऊं ?"

मानो बहुत बड़ी दिल्लगी की हो, इस तरह वह सभी के मुंह की ओर देखने लगा।

भूषण सिंह ने उसे धमकाया. "फिर वही दिल्लगी ?"

"देखो भूषण सिंह, हाथ मत उठाना। साला एक तो खाना नहीं मिला दिन भर से। पेट गुड़गुड़ा रहा है भूख के मारे। भूखे पेट दिल्लगी

अच्छी नहीं।"

लेकिन इसके बाद चुपचाप जब अपनी कोठरी में जाकर वह पड़ रहत है तो पता नहीं कब उसे नींद आ जाती है। झिंगुर और तिलचट्टों भरी रहती है वह कोठरी। जब उसकी नींद टूटती है तो वह देखता कि थाली भर भात कोई उसके पास रख गया है। न तो किसी ने उ जगाया और न ही बताया। नफर झट उठ बैठा। देखा कि भात पर ए मछली रखी थी।

बाहर की ओर देखकर जोर से पुकारा उसने, "उधर कौन है रे ?

भात कौन रख गया, यही जानना चाहता था वह। "हुंह, कोई न सुनता तो न सुने।" सोचकर बड़े-बड़े ग्रास लेकर वह भात खाने ल और खाकर फिर सो जाता है। सोया तो पहले भी था पर भूखे पे अच्छी नींद नहीं आती। लेटे-लेटे कभी उसके मन में आता कि कहीं ज सकता तो अच्छा रहता। पर फिर सोचता कि आखिर कहां जाय। क चले भी जाने से होगा क्या ? धोबी को एक गंजी धोने को दी हुई अगर वह लाने ही चला जाय तो पैसे देने पड़ेंगे। इससे तो बेहतर कि सोया ही रहूं। सोये-सोये नींद लेते जितना वक्त कट जाय व अच्छा है।

पहले जब भी उसे भूख में गुस्सा आ जाता तब हमेशा यही हंगा मचा करता था। पर अब वैसा नहीं करता वह। आधा दिन बिना ख ही सोये-सोये अच्छी तरह गुजर जाता था। मर्दानखाने के आंगन में नीम का पेड़ है न उसीके पश्चिमी कोने में एक कोठरी है। गुरुदेव ज भी आते हैं, वे उसी कोठरी में ठहरते हैं। पर उनका रहना भला कित दिनों का ? साल में एकाध बार ही आते हैं। जितने दिनों वह रहते उतने दिन इस कोठरी की धुलाई-सफाई अच्छी तरह होती है। धूप आ से कोठरी को सुवासित किया जाता है। सब कुछ धुला-पुंछा, सा स्वच्छ रहता है। पर उनके जाते ही दुबारा कीड़े-मकोड़ों का साम्रा छा जाता है वहां। फिर तो इस कोठरी की तरफ कोई झांकता भी नहीं

देगा। खा चाहे न खा, मेरी बला से। मर ... पड़ा रह। मेरा क्या जाता है ?"

"हां मैं मरूंगा, तेरा क्या जाता है ? ... इतनी चिन्ता क्यों हो रही है, ज़रा मैं भी तो सुनूं ?"

रसोईघर में पहुंचकर शिशु की मां कहती, "नहीं ... तुम्हारा नफर नहीं आता, दीदी।"

महाराजिन दीदी कहती, "वह नहीं आता। इसका मतलब ... भूखा ही रहेगा ? जा, एक बार और बुलाकर देख।"

"अब मैं उसे बुलाने नहीं जाऊंगी। इतनी ही चिन्ता है उनको तो ...जाकर खुद बुला लाओ।"

कभी-कभी नीचे हुई इन सारी खुराफातों की खबर मालकिन तक ...ी पहुंच जाती थी। वे सिन्धु से पूछतीं, "अरी सिन्धु, नीचे रसोईघर में ...तना हंगामा क्यों होता है ?"

सिन्धु कहती, "यह सब उसी नफर का ही काम है। वही बखेड़ा ...ड़ा करता रहता है।"

दुर्गा-पूजा पर सभी को कपड़े मिलते थे। मालिक और मालकिन ... ही नहीं, सभी के लिए कपड़े बनवाये जाते थे। यहां तक कि इस घर ... कुत्ते-बिल्ली तक के कपड़े बनते थे। जगत्तारण बाबू, दुर्लभ बाबू, ...लालविहारी बाबू इन सबके साथ इनके लड़के-लड़कियों तक के कपड़े ...ते थे। कपड़ों का मतलब सिर्फ धोती-कुर्ता ही नहीं, धोती-कुर्ता, जूते, ...ड़ी, मोजे, गंजी आदि सभी चीजें आती थीं। यह रिवाज संसार सेन

के समय से ही चला आ रहा है।

नफर भी अचानक ही जैसे सजग हो जाता था।

वह देखता, ड्योढ़ी पर नौबत बैठ गयी है। हरी जमादार ने लाल गंजी पहन रखी है। भूषण सिंह ने अपने कपड़े हल्दिया रंग में रंग लिए हैं। आखिर बात क्या है ? कहीं पूजा तो नहीं आ गई ?"

तब वह खजांचीखाने में हाजिर होता और कहता, "खजांची बाबू पूजा आ गई है। मेरे लत्ते-कपड़े कहां हैं ?"

कालीदास बाबू हिसाब की बही पर से नज़र ऊंची करके जवाब देते, "तेरे कपड़े ! कहां था तू ?"

"मैं वह सब सुनना नहीं चाहता, मेरे कपड़े दीजिये। गंजी, कुरता, जूते, मोजे सब कुछ देना पड़ेगा।"

"बाप रे, आंखें लाल करके बात करता है, नहीं दूंगा जा। तू क्या कर लेगा नहीं दूंगा तो ?"

"मतलब ? देंगे कैसे नहीं, आपको देना पड़ेगा। नहीं तो बड़े बाबू से कहकर नौकरी से निकलवा दूंगा सभी को।"

सारी बातें मोहरी बाबू चुपचाप बैठे सुन रहे थे। अब वे आगे आये। बोले, "क्या बक रहा है नफर तू ? होश में तो है ?"

"जो कुछ कह रहा हूं ठीक कह रहा हूं। जब सभी को पूजा पर [illegible]ड़े मिलते हैं तो मुझे ही क्यों नहीं दिये गए, इसका जवाब चाहिए [illegible]झे ?"

कालीदास बाबू बोले, "हां-हां, तुझे कपड़े नहीं मिलेंगे। जा, कर ले तुझे जो करना है।"

"क्यों नहीं मिलेंगे, यही तो मैं जानना चाहता हूं। इस घर में मेरा क्या ज़रा भी अस्तित्व नहीं है ?"

नफर में इतना साहस किसके बूते पर है, यह कौन जाने। वह इतना अधिकार भी क्यों जताता है यह भी कोई नहीं जानता। वह इस घर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता। सम्बन्ध का कहीं कोई सूत्र ही नहीं

। इसके अलावा, नौकर-चाकरों की तरह उसे महीना भी नहीं दिया
ता। किसी आत्मीय-स्वजनों में भी उसका नाम नहीं जुड़ता। इस घर
किसी भी व्यक्ति को यह पता नहीं कि वह इस घर में किस सूत्र से
ग्रा टिका हुआ है ? किसके वल पर रह रहा है ? लेकिन उसको तो
: व्यक्ति के वरावर का हिस्सा चाहिए इस घर में। भात खाते वक्त
ौके वरावर मछली भी होनी चाहिये उसकी थाली में। दुर्गा-पूजा पर
के वरावर कपड़े चाहिए।

मोहरी बाबू पूछते हैं, "तू था कहां ? तू कभी दिखायी तो देता
नहीं।"

"मैं कुछ नहीं जानता। जव आपके खाते में मेरा नाम लिखा हुआ
तव मुझे कपड़े न देने का मतलव आप लोग मेरे हिस्से के कपड़ों की
री करते हैं। सरासर चोरी है यह तो।"

"क्या कहा ? हमें चोर वताता है ?"

कहकर मोहरी वावू मुक्का तानकर आगे वढ़े और उसी क्षण नफर
छलकर उनकी गर्दन पर सवार हो गया।

"साले चोर कहीं के। मेरे कपड़ों की चोरी करते हैं और मुझे ही
व वताते हैं। वड़े बाबू से कहकर सवकी नौकरी खत्म नहीं करा दूंगा?
ो ही नहीं देंगे साले।"

कालीदास बाबू ने ऐन मौके पर देख लिया नहीं तो नफर मोहरी
बू को काट खाता।

कालीदास बाबू 'भूषण सिंह, भूषण सिंह' चीख पड़े

भूषण सिंह दौड़ता हुआ आया और नफर को पकड़

नफर चिल्लाने लगा, "दरवान, मुझे छोड़ दो। मां व
छोड़ दो मुझे। मैं वड़े वावू के पास जा रहा हूं अभी मजा
को।"

भूषण सिंह ने धक्का मारकर नफर को जमीन पर पट
नफर तव भी वश में नहीं आया। शरीर पर लगी धूल झा

भाग खड़ा हुआ। घुमावदार सीढ़ियों पर जल्दी-जल्दी चढ़ता हुआ एक-दम से वड़े वावू के मर्दानखाने वाले कमरे में जा पहुंचा। वड़े वावू दिन का अधिक भाग वहीं गुजारते थे। अगर जगत्तारण वावू जाने में अधिक रात कर देते तो फ़िर रात को भी नहीं जा पाते थे। जव से जगत्तारण वावू वड़े वावू के मास्टर वने तव से वड़े वावू इसी कमरे में रहते आये हैं।

नफर ने वहां पहुंचकर आवाज़ लगायी, "वड़े वावू, वड़े वावू, मैं नफर आया हूं।"

ऐसे वक्त वड़े वावू की नींद अक्सर नहीं खुलती थी। वड़े वावू की नींद खुलने में वहुत समय लगता था। उनका खास सेवक पांचू दस वजे से ही उनके विस्तर की ओर निहारता वैठा रहता। वड़े वावू की नींद टूटते ही सिगरेट का टिन या वोतल हाजिर करनी आवश्यक है। कभी-कभी वड़े वावू को प्यास लग आती है। अतः खास सेवक पांचू को सारा इंतजाम रखना पड़ता है। पिछली रात ही जगत्तारण वावू वहुत देर तक वातचीत करके गये हैं। वहुत दिनों पहले यानी वड़े मालिक के शासन-काल में जव जगत्तारण वावू वड़े वावू के मास्टर वनकर इस घर में आये थे वस उसके वाद वड़े वावू की पढ़ाई अधिक आगे नहीं वढ़ी। जगत्तारण वावू एक दिन एटर्नी वन गये। वड़े मालिक का निधन हो चुका और फिर एक दिन वड़े वावू की शादी भी हो गई।

वड़े मालिक गाड़ी में वैठते वक्त कभी-कभार पूछ लिया करते थे, "लड़के की पढ़ाई कैसी चल रही है, जगत्तारण वावू ?"

जगत्तारण वावू जवाव देते, "जी, वड़े वावू का व्रेन तो वहुत अच्छा है, मुझसे भी तेज़ है उनका व्रेन। पर उनमें एक ही खरावी है, मेहनत नहीं करना चाहते ज़रा भी।"

मालिक कहते, "मेरा ही स्वभाव पाया है उसने भी।"

काशीधाम जाने से पहले जगत्तारण वावू के ज़िम्मे कोई काम नहीं था, वस वड़े मालिक के साथ घूमा करते थे। लेकिन कहावत है न कि

सिर्फ भिक्षा से गृहस्थी नहीं चलती, अतः जब काशी से वापस आने पर बड़े मालिक ने दत्तक लिया तो उसके कुछ साल बाद ही उस लड़के की पढ़ाई-लिखाई का भार जगत्तारण बाबू को ही सौंप दिया गया। गोद लिया हुआ बेटा था, अतः उसके साथ अधिक डांट-डपट नहीं की जा सकती। बस तभी से जगत्तारण बाबू ने उसके साथ बैठ पढ़ाई के बदले गप्प हांकना शुरू किया था।

"आपको पता है बड़े बाबू, आज फिर एक मुवक्किल फंसा है।"

वे छोटेपन से ही मुवक्किलों के फंसने के किस्से सुनाते आये हैं बड़े बाबू को। बचपन से एक ही बात सुनते-सुनते बड़े बाबू की धारणा ही बन गई कि मुवक्किल लोग वकीलों के जाल में फंसने के लिये ही जन्म लेते हैं। नूलो मल्लिक के लड़के कार्तिक मल्लिक से लेकर ऐसा कोई भी मुवक्किल कलकत्ते में बाकी नहीं बचा जो इस उलझन से बरी हो।

बड़े बाबू पूछते, "मास्टर, हमारे बैंका शील के क्या हाल-चाल हैं, भई?"

"एक दिन उसकी भी बारी आयेगी बड़े बाबू, आप दो-चार दिन सब्र कीजिये बस। मुझे सब खबर है। आजकल उसके भी बहुत पर निकल आये हैं।"

"और उस नैड़ा मित्तिर का क्या हुआ? अरे वही जिसने कुछ दिनों जोर-शोर से कप्तानी की थी?"

जगत्तारण बाबू कहते, "जी, वह तो कब का ही गया। उड़ने की फिक्र में था बेचारा कि पंख कतर डाले गये उसके। आपको सारी बातें विस्तार से बता तो चुका हूं! याद नहीं है?"

इतनी सब बातें करने के बाद जाने के लिये उठते-उठते चुपके से कहते, "टेंपी की तबियत बहुत खराब है। आपको कोई खबर नहीं इसकी?"

"नहीं तो।"

"शायद शर्म के मारे नहीं बताया होगा आपको?'

"क्यों, शर्म किस बात की ?"

जगत्तारण बाबू कहते, "अजी, शर्म नहीं आयेगी ? आप कैसी बात
ते हैं, बड़े बाबू लड़कियों को शर्म आती ही है। आपका ही खाती है,
पका ही पहनती है, आपकी दया से ही आज वह मनुष्यों जैसी जिन्दगी
रही है। फिर भला कुछ देर के लिये गये हुए आपका जी खराब
से शर्म नहीं आयेगी ? हजार हो, आखिर है तो लड़की !"

बड़े बाबू पूछते, "तो फिर, मुझे क्या करना पड़ेगा मास्टर ?"

जगत्तारण बाबू कहते, "आपको एक बार जाना पड़ेगा बड़े बाबू,
सकी तबियत खराब हो या न हो, आपका एक बार वहां जाना ही
चित है।"

बड़े बाबू कहते, "लेकिन आजकल स्टेट की स्थिति भी तो ठीक
नहीं है।"

"बस एक बार जाइये, और आ जाइये। इससे स्टेट की अच्छी-बुरी स्थिति का क्या सम्बन्ध है ? आप हमेशा वहां रहने के लिए तो
जाते नहीं···! इसके अलावा कितने ही दिन बीत गये इन सबके बिना,
आखिर शुक्राचार्य बनने की ठान ली है क्या आपने ?"

बड़े बाबू ने कहा, "तो फिर नफर को बुलाना पड़ेगा।"

"हां, जब चलना हो, मेरे ऑफिस में नफर के द्वारा इत्तिला भिजवा
दीजियेगा, मैं तैयार रहूंगा।"

इसी तरह बीच-बीच में टेंपी की तबीयत खराब होने का नियम-सा
बन चुका था। स्टेट की स्थिति खराब बताकर बड़े बाबू एक बार वहां
जाने का विरोध भी करते लेकिन आखिर जगत्तारण बाबू की बातों का
ऐसा प्रभाव होता कि दूसरे दिन सुबह पहले नफर की पुकार होती थी।
पर यह भी नियम-सा बन गया था कि जाने से पहले जगत्तारण बाबू
भीतर जाकर मां-जननी के चरणों की धूल अवश्य ले लेते थे।

भीतर जाकर वे कहते, "कहां हो, मां-जननी ! आपके चरणों की
धूल मिल जाती तो धन्य हो जाता मैं !"

"क्या काम है ?"

नफर कहता है, "तू ही देख पांचू, मुझे मार-मारकर अधमरा क दिया है उन लोगों ने। देख, खून निकल रहा है। सभीको पूजा की खुश में कपड़े मिले हैं। नौकर-चाकर, नौकरानी आदि कोई भी बाकी नह रहा। पर वह हरामजादा मोहरी बाबू है न, बेटा मेरे कपड़े मारकर…"

"कौन है रे बाहर ?"

भीतर से भारी गले की आवाज आयी। पांचू लपककर भीत गया।

"कौन चिल्ला रहा है सांड की तरह ? सुबह-सुबह नींद खराब कर दी।"

"जी, नफर है।"

"जूते मारकर बाहर करो उसे। बेटा सांड की तरह डकरा रहा है।"

कालीदास बाबू पूछते, "नफर कहां गया है ?"

मोहरी बाबू बोले, "बेटा गया था बड़े बाबू के पास, लेकिन डांट खाकर भाग आया वहां से। अब दिमाग ठिकाने आ जायेगा।"

और सचमुच ही नफर एकदम शांत हो जाता। धीरे-धीरे कदम रखता हुआ वह वापस अपने कमरे में चला जाता है। कमरा यानी कोठरी। उसमें गुरुदेव का तख्तपोश खाली पड़ा है। उसके नीचे नफर के बिस्तर लपेटे हुए पड़े थे। उन्हें ही खोलकर बिछाता है और लेट जाता है। हुंह, जहन्नुम में जायं सब। मत दो कपड़े अगर नहीं देने हैं तो। मछली भी मत दो। सो जाने से उसे इन सब की याद भी नहीं आती। इस मकान में कहीं भी कुछ हो, नफर को कोई फर्क नहीं पड़ता। नफर ने तो सो-सोकर ही अपने इतने साल गुजार दिये और आगे के भी कुछ साल और गुजार सकता है।

लेकिन आज तो नफर के लिए खास सेवक पांचू ही दौड़ा हुआ आया है। नफर उस वक्त हमेशा की तरह सोया हुआ था।

"नफर बाबू, नफर बाबू !"

नफर एक ही झटके में उठ खड़ा हुआ। बोला, "क्या है रे पांचू ? बड़े बाबू ने बुलाया है क्या ?"

"हां। बुलाया है।"

"क्या बोले ?"

"बड़े बाबू की नींद खुलते ही सुबह जब मैंने सिगरेट का डिब्बा हाजिर किया तो अंगड़ाई लेते हुए बोले, "हां रे, नफर कहां है ? आजकल नफर दिखाई ही नहीं देता। वह जीवित भी है या मर गया ?"

बात सुनकर नफर के होंठों पर मुस्कराहट फैल जाती है। उसकी खुशी शब्दों के मार्फत फूट पड़ी, 'जय मां काली,' कहकर नफर ने अपना बिस्तर लपेटकर चौकी के नीचे खिसकाया और दौड़ पड़ा खजांची बाबू के कमरे की ओर। कालीदास बाबू हिसाब की बही देखने में मशगूल थे। मोहरी बाबू तो जैसे बही-खातों में डूबे हुए थे।

नफर तीर की तरह वहां पहुँचा और बोला, "ओय, खजांची बाबू, जरा पांच का एक पत्ता झटपट इधर खिसका दीजिए, जल्दी पांच रुपये…।"

कालीदास बाबू क्षुब्ध हो उठे, "तू फिर आ गया ? उस दिन बड़े बाबू के जूते पड़े तब भी तुझे अक्ल नहीं आई ? है न रे !"

मोहरी बाबू ने कहा, "निकल यहां से, मैं कहता हूं निकल यहां से हरामजादे !"

नफर ने नथुने फुलाकर कहा, "फालतू बात करने की जरूरत नहीं है समझे न, चुपचाप पांच रुपये दीजिए, मुझे बड़े बाबू ने बुलाया है। ज्यादा बकबक सुनने का मेरे पास समय नहीं है।"

बड़े बाबू का नाम सुनते ही कालीदास बाबू के चेहरे के भाव बदल गये।

बोले, "क्या सच ! बड़े बाबू ने बुलाया है तुझे ?"

उसके बाद कुछ क्षण सोच में डूबे रहे, फिर बोले, "महीने के अंत

में ऐसे असमय उन्होंने तुझे बुलाया है ?"

नफर बोला, "दीजिये, दीजिये मुझे रुपये दीजिये। मेरे पास फालतू बातों के लिए वक्त नहीं है। देर होगी तो बाबू नाराज़ हो जायेंगे मुझ पर।"

सिर्फ कालीदास बाबू ही नहीं, पूरे मकान के लोगों के चेहरे के भाव बदल गये थे यह खबर सुनकर। पूरे मकान में खबर फैल गई कि बड़े बाबू ने नफर को बुलाया है। नफर रुपये लेने के बाद धोबी के यहां जायेगा। वहां से धुले कपड़े लेकर बाल बनवाने जायेगा, दाढ़ी बनवायेगा। फिर तो नफर को पहचाना ही नहीं जा सकता। फिर तो नफर पहलेवाला नफर थोड़े ही रहता है। सभी उसे नफर बाबू कहने लगते हैं। जनानखाने में मांजी पिस्ता-बादाम पीसने का हुक्म देती हैं। सुबह से ही पिस्ते-बादाम पिसने शुरू हो जाते हैं। मछली का मुंड मंगवाया जायेगा। नये सिरे से बाजार किया जायेगा। उस दिन बहूरानी बहुत ही सरंजाम-सहित स्नान करेंगी। नहाकर खूब बनाव-सिंगार करेंगी। उस दिन बड़े बाबू की दाढ़ी बनाने में अधर नाई को मोटी रकम बख्शीश में मिलेगी।

अगर सिन्धु अपनी मालकिन से पूछेगी, "आज पिस्ते-बादाम क्यों पिस रहे हैं मांजी ?"

तो मांजी जवाब देंगी, "लड़के ने आज नफर को बुलवाया है न।"

उस दिन रसोई घर में तो ज़ोरदार उथल-पुथल मच जाती थी। यों तो हर समय ही रसोई घर में उथल-पुथल मची रहती थी। भात चूल्हे पर चढ़ाते-चढ़ाते दाल जल जाती और दाल सम्हालने लगो तो भात अधिक गल जाते। पर उस दिन तो बेचारी महाराजिन की हालत की कुछ पूछिये ही मत।

वह जल्दी में आवाज़ देती है, "मसाला पीसने दिया उसका क्या हुआ, शिशु की मां ?"

और शिशु की मां के बाहर-भीतर आने-जाने में दोनों पैर बुरी

में ऐसे असमय उन्होंने तुझे बुलाया है ?"

नफर बोला, "दीजिये, दीजिये मुझे रुपये दीजिये। मेरे पास फालतू बातों के लिए वक्त नहीं है। देर होगी तो बाबू नाराज़ हो जायेंगे मुझ पर।"

सिर्फ कालीदास बाबू ही नहीं, पूरे मकान के लोगों के चेहरे के भाव बदल गये थे यह खबर सुनकर। पूरे मकान में खबर फैल गई कि बड़े बाबू ने नफर को बुलाया है। नफर रुपये लेने के बाद धोबी के यहां जायेगा। वहां से धुले कपड़े लेकर बाल बनवाने जायेगा, दाढ़ी बन-वायेगा। फिर तो नफर को पहचाना ही नहीं जा सकता। फिर तो नफर पहलेवाला नफर थोड़े ही रहता है। सभी उसे नफर बाबू कहने लगते हैं। जनानखाने में मांजी पिस्ता-बादाम पीसने का हुक्म देती हैं। सुबह से ही पिस्ते-बादाम पिसने शुरू हो जाते हैं। मछली का मुंह मंगवाया जायेगा। नये सिरे से बाजार किया जायेगा। उस दिन बहूरानी बहुत ही सरंजाम-सहित स्नान करेंगी। नहाकर खूब बनाव-सिंगार करेंगी। उस दिन बड़े बाबू की दाढ़ी बनाने में अधर नाई को मोटी रकम बख्शीश में मिलेगी।

अगर सिन्धु अपनी मालकिन से पूछेगी, "आज पिस्ते-बादाम क्यों पिस रहे हैं मांजी ?"

तो मांजी जवाब देंगी, "लड़के ने आज नफर को बुलवाया है न।"

उस दिन रसोई घर में तो ज़ोरदार उथल-पुथल मच जाती थी। यों तो हर समय ही रसोई घर में उथल-पुथल मची रहती थी। भात चूल्हे पर चढ़ाते-चढ़ाते दाल जल जाती और दाल सम्हालने लगो तो भात अधिक गल जाते। पर उस दिन तो बेचारी महाराजिन की हालत की कुछ पूछिये ही मत।

वह जल्दी में आवाज़ देती है, "मसाला पीसने दिया उसका क्या हुआ, शिशु की मां ?"

और शिशु की मां के बाहर-भीतर आने-जाने में दोनों पैर बुरे

तरह दुखने लग जाते। फिर तो बड़े बाबू के हुक्म और फरमाइशों की बाढ़ से पूरा घर चरखी की तरह घूमने लगता। और नफर के उस वक्त क्या ठाठ होते थे। भूषण सिंह वही भूषण सिंह है जिसने उस दिन उसे लाठी से मारा था पर आज वह भी उसकी कितनी इज्जत करता है। नफर आज के दिन पहचाना ही नहीं जाता। बाल-बाल बनवा कर, धोबी के धुले कपड़े पहनकर वह सीधा रसोईघर में जाकर भात परसने का हुक्म देगा। आज वह शिशु की मां के साथ मछली के लिये झगड़ा नहीं करेगा।

शिशु की मां, जो इतनी तुनकमिजाज वाली औरत है, आज वह भी उसे बार-बार आग्रह कर-करके खिला रही है, "थोड़े भात और लीजिये न, नफर बाबू!"

"नहीं-नहीं।"

अगर सही कहा जाय तो उस दिन नफर नहीं के बराबर खायेगा। भात से पेट ठूंसकर रात को मिलने वाले व्यंजनों का जायका नष्ट नहीं करना चाहता वह।

वह कहता है, "ऐ, शिशु की मां। आज इतनी मछली क्यों दे दी मुझे? आज तो रात को मैं वहां मांस खाऊंगा।"

इस घर के इतिहास में इस तरह की घटना कोई नई बात नहीं है। पर दैनिक-चर्या में शामिल हो ऐसा भी नहीं था। महीने भर के बाकी दिन कोई भी नफर की खोज-खबर रखने की जरूरत महसूस नहीं करता लेकिन उस दिन सभी के लिये नफर एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बन जाता था। उस दिन नफर बड़े बाबू का दाहिना हाथ ही हो जैसे। बातों-बातों में उस दिन बहुत बार नफर को आवाज़ देंगे बड़े बाबू। खास सेवक पांचू नजर आते ही उसे डांटेंगे, "नफर कहां है? तुझसे नफर को बुलाने के लिये कहा था न?"

"हुजूर, बुलाया तो था। आपने ही तो मुझे मास्टर साहब के पास भेज दिया था।"

"हां, भेजा था तो तुझसे यह थोड़े ही कहा था कि दिन भर वहीं बैठे रहना। वह आया कि नहीं तुझे देखना तो चाहिये।"

पांचू को फिर मर्दानखाने में दौड़ना पड़ता। नफर आया कि नहीं, खोज-खबर लेनी पड़ेगी। उस वक्त नफर की कोठरी में कोई नहीं था। उस दिन गुलमोहर अली भी अपनी पुरानी पोशाक पहन कर तैयार होगा। अब्दुल बहुत दिनों बाद फिर से घोड़े को गाड़ी में जोड़ता है। घोड़ा फिर से गाड़ी में जुता हुआ अपने खुर नेंकता खड़ा है। गुलमोहर अली उस वक्त गाड़ी की छत पर बैठा रहता, बड़े बाबू के गाड़ी में बैठते ही गाड़ी हांक देगा वह।

लेकिन नफर कहीं दिखाई नहीं दे रहा था।

खास सेवक पांचू एक बार खजांचीघर में भी झांक आया था।

उसे झांकते देख मोहरी बाबू पूछते हैं, "क्या है रे ? किसे ढूंढ़ रहा है ?"

"नफर को ढूंढ़ रहा हूं, हुजूर।"

"नफर तो पांच रूपये लेकर धोबी के यहां गया था। वहां से आने के बाद तो बाबू साहब सज-संवर कर बिल्कुल फिटफाट होकर न जाने कहां निकले हैं।"

उसके बाद पांचू उसे दरबानों की कोठरियों में भी देख आता है। वहां वह पूछता है, "भूषण सिंह, नफर बाबू को देखा था ?"

फिर रसोईधर में भी जाता है नफर को ढूंढ़ने।

"अरी शिशु की मां, जरा महाराजिन दीदी से पूछ तो कि नफर ने खाना खाया है या नहीं ?"

पर नफर आज किसी काम में भी फांकी नहीं देता। आज के दिन ही तो उसका खास महत्व जाना जाता है। कंबली टोला से एटर्नी बाबू को भी ठीक वक्त पर ही ले आया। जगत्तारण बाबू ठीक वक्त पर ही आ पहुंचे थे।

मांजी के कमरे के सामने पहुंचकर बड़े बाबू ने पुकारा, "मां !"

बड़े बाबू की अंगुलियों में बहुत-सी अंगूठियां जगमगा उठीं। न्नट वाली धोती का छोर जमीन तक लटक रहा था। खास सेवक ने ल्दी आकर उस छोर को हाथों में थाम लिया। मांजी के कमरे के मने बड़े बाबू अपनी छड़ी पर भार डाले खड़े थे।

खास सेवक ने सिन्धु को आवाज़ देकर कहा, "अरी, जरा मांजी को ला दे तो।"

मालकिन के आते ही बड़े बाबू उनके कदमों में सिर टिकाकर णाम करते हैं, और कहते हैं—

"तो मैं जाऊं मां ?"

मांजी ने कहा, "आज फिर जा रहे हो, बेटा ? अभी कुछ दिन पहले ी तो तुम्हारी तबियत ठीक हुई है। अभी भी तुम पूरी तरह स्वस्थ हीं हुए हो।"

बड़े बाबू ने कहा, "बस गया और आया मां।"

मांजी ने सिन्धु से पूछा, "लड़के को पिस्ते का शरबत दिया कि हीं ?"

बड़े बाबू ने कहा, "पी लिया मां, सब कुछ खा-पी चुका।"

"शरबत में मिठास हुआ था ?"

इसके बाद बहूरानी की बारी आती। इतनी देर बहूरानी घूंघट निकाले दरवाजे के बगल में खड़ी थीं। बड़े बाबू को कमरे में आते देख भीतर खिसक गयीं और बड़े बाबू के भीतर आते ही बोलीं, 'तबियत खराब है तो बिना जाये भी तो चल सकता था।"

"बस गया और आया।" बड़े बाबू ने कहा।

"इस बार तीन-चार दिन मत रहना। देखो तो, तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है।"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

लड़का अपने स्वास्थ्य पर अधिक ज्यादती न करे।"

जगत्तारण वावू कहते, "यह क्या कह रही हैं आप। मेरे रहते आप वड़े वावू की ओर से निश्चित रहिये। वड़े वाबू वहुत जिद पर आ गये हैं जाने के लिये, इसीलिये—नहीं तो•••"

उसके वाद खजांचीखाने से रुपये-पैसे लेकर वड़े वावू गाड़ी में जा वैठेंगे। उनके वैठने के वाद वैठेंगे जगत्तारण वावू, उनके वाद नफर। गुलमोहर अली फिर गाड़ी हांक देगा। और खड़खड़ाहट की आवाज करते सदर गेट को भूषण सिंह दौड़कर खोल देगा।

इसी तरह हर वार महीने में एक वार वड़े वावू की तवियत खराब हुआ करती है, और हर वार सुवह होते ही नफर की पुकार होती है। इसी तरह खजाने में से कई हजार की मोटी रकम चुपचाप निकलती जाती है। इन सव नेगचार के वाद तीन रात वाग वाली हवेली में बिताकर जव वड़े वावू वापस घर आते हैं, उस वक्त तक उनकी जेब से सारी रकम खर्च हो चुकी होती है। इसके अलावा, काफी रुपये उधार भी हो जाते हैं।

घर पहुंचते ही वड़े वावू मांजी के सामने साष्टांग दंडवत की मुद्रा में पसर जाते हैं, और कहते हैं, "मां, अपनी अधम संतान को माफ करो, मां!"

मांजी वात्सल्य रस से विभोर हो डांटने के से अंदाज में कहती हैं, "हैं, हैं, यह क्या कर रहे हो? उठो। देखो, दो दिन में ही कैसा चेहरा निकल आया है।"

"नहीं, मैं यों ही पड़ा रहूंगा, जव तक तुम अपनी इस अधम संतान को क्षमा नहीं कर दोगी।"

अव मांजी वड़े वावू के खास सेवक पांचू को डांटती हैं, "खड़ा-खड़ा मुंह क्या ताकता है! उठा, जा उठाकर इसे इसके कमरे में ले जा।"

और हर बार बाद में जगत्तारण बाबू आकर बताते, "माँ-जननी, भला बड़े बाबू आना चाहते थे! मानो गोंद लगाकर चिपके हुए हों। मैं था, इसलिये बड़ी मुश्किल से समझा-बुझाकर लाया हूं।"

बेचारे नफर की फिर वही दशा हो जाती। नफर फिर अपनी उसी कोठरी में घुस जाता। चौकी के नीचे से अपने पुराने बिस्तर को घसीट-कर बाहर निकालता और उन्हें बिछाकर चित ही पड़ा रहता। उसके बाद नफर का अस्तित्व ही मानो लुप्त प्रायः हो जाता। किसी को भी उसका खयाल नहीं आता।

लेकिन इस बार एक कांड हो गया।

ठीक अपरान्ह के वक्त बड़े बाबू की गाड़ी सदर गेट से बाहर निकल गई थी। उसके बाद से ही मकान सांय-सांय करने लगा था। जनान-खाने और मर्दानखाने दोनों तरफ आलस्य का साम्राज्य छा गया था। हरी जमादार से लेकर फूलमणी, सिन्धु, खजांची बाबू, मोहरी बाबू, शिशु की मां सभी सुस्त, ढीले-ढाले से हो लेट गये थे। अब क्या काम है, बड़े बाबू तो घर में हैं नहीं। बड़े बाबू जब नफर को साथ लेकर गये हैं तो तीन-चार दिन की तो छुट्टी।

पर इस बार एक कांड हो गया।

और घटित भी बहुत अचानक ही हुआ। रात का वक्त था, न तार, न चिट्ठी, अचानक गुरु-पुत्र आ उपस्थित हुए। भूषण गेट के पास ही सो रहा था।

उसने पूछा, "कौन है ?"

"मैं हूं रे, मैं, दरवाज़ा खोल।"

आवाज़ पहचानते ही भूषण सिह हड़बड़ाकर उठा और आने वाले को सलाम किया। फिर बोला—

"हुजूर, बड़े बाबू तो हैं नहीं, वह बाहर गये हैं।"

दरवाज़ा खोल दिया गया। भूषण सिह ने भीतर खबर पहुंचायी। पयमन्त खा-पीकर सोने ही जा रहा था। उसने जाकर सिन्धु को खबर

दी। सिन्धु ने मांजी को खबर दी। मांजी उस समय तक सोयी नहीं थीं। सिन्धु से वे बोलीं, "रसोईघर में कहला दे कि गुरुदेव आये हैं।

गुरुदेव इस तरह बिना सूचना दिये कभी नहीं आते थे। मांजी ने उठकर कोरे सफेद वस्त्र बदले, फिर सिन्धु से पचास रुपये निकलवाये। गुरुदेव को प्रणाम कर दक्षिणा देनी होगी न। सीढ़ियों की लाइट बन्द हो चुकी थी। लेकिन अब चारों तरफ लाइटें जगमगा उठी थीं। मांजी ने सिन्धु से कहा, "जा, गुरुदेव को अपने साथ ऊपर ले आ।"

चौकी बिछायी गयी। उसके ऊपर रेशम का आसन बिछाया गया। आसन पर गुरुपुत्र पद्मासन लगा बैठ गये। मांजी ने गुरुपुत्र के चरणों में मस्तक नवाकर प्रणाम किया। उसके बाद उनके कदमों में दक्षिणा रख दी। गुरुपुत्र ने कहा, "मैं बहुत ही पशोपेश में फंस गया हूं, इसीलिए इतनी दूर चलकर आया हूं आपके पास।"

"क्या हुक्म है, फरमाइये।"

गुरुदेव ने कहा, "मेरे पिताजी ने देह त्याग दी है।"

मांजी खबर सुनकर स्तब्ध-सी रह गईं। पूछा, "कब? मुझे तो खबर ही नहीं मिली?"

बहुत शीघ्र एवं अचानक ही वह घटना घट गई, इसीलिए आपको ...र नहीं दे पाया। इसके अलावा मुझे तो आना ही था, अतः पत्र द्वारा सूचना देना आवश्यक भी नहीं समझा।"

मांजी ने पूछा, "पर ऐसी शोकावस्था की घड़ी में आपने खुद आने का कष्ट कैसे किया?"

"वही बताने आया हूं। आपको याद है, एक बार मालिक आपके साथ काशी गये थे। वहां आप बहुत बीमार हो गयी थीं। आप करीब एक साल तक बिस्तर पर ही रहीं।"

यह बात बहुत पहले की है। वह मंगला भी साथ गई थी। उन दिनों सिन्धु नहीं थी। सिन्धु की जगह कुंजबाला थी, वही साथ गई थी। अश्वमेध घाट पर मकान खरीदा गया था। सुबह-शाम बाबा विश्वनाथ

के दर्शन किये जाते। पर अचानक मांजी की तवीयत खराव हो गई। तवीयत भी ऐसी खराव हुई कि मांजी ने विल्कुल खाट पकड़ ली। मालिक के सामने बहुत वड़ी मुसीवत आ खड़ी हुई। परदेश का मामला था। उन्हें यह भी पता नहीं था कि कहां डाक्टर या वैद्य मिलेगा ? गुरुदेव काशी के ही रहनेवाले थे। उन्होंने ही सारा इन्तजाम किया। कलकत्ता टेलीग्राम दिया गया। खवर पाते ही खजांची वावू रुपये लेकर खुद आये काशी !

मांजी ने कहा, "हां, कभी गये थे। वह तो वहुत दिनों पहले की वात है।"

गुरुपुत्र ने कहा, "पिताजी के मुंह से सुना था कि उन दिनों आपको जरा भी होश नहीं रहता था।"

"हां। मैं आज जीवित हूं, यह गुरुदेव के आशीर्वाद का ही फल है।"

गुरुपुत्र ने कहा, "मरने के कुछ घंटों पहले पिताजी मुझे सभी वातें वता चुके हैं। आपको नया जीवन पिताजी के आशीर्वाद से प्राप्त नहीं हुआ है मांजी, आपका मारक ग्रह राहू है, वह तो वृहस्पति के प्रवल प्रभाव से आपकी जान नहीं गई, लेकिन केतु-मंगल के प्रभाव से आपकी वहुत वड़ी क्षति यानी आपका सर्वनाश अवश्य हो चुका था। इसीलिए पिताजी उस समय आप लोगों को वावा विश्वनाथ के चरणों के आश्रय में ले जाने के लिए इतना आग्रह कर रहे थे।"

"हां, यह मुझे पता है।"

"नहीं मां, आपको सारी वातें मालूम नहीं हैं। मालिक ने आपको सभी वातें नहीं वतायीं। पर पिताजी को सव-कुछ वताया था। और वे ही सव वातें आपको वताने मैं आज यहां आया हूं। मालिक ने यह वात अपनी मृत्यु के वीस साल वाद आपसे वताने को कहा था। आज वे वीस साल पूरे हुए।"

गुरुपुत्र ने सिन्धुमणी की ओर देखकर कहा, "आपको वह व[illegible] वताऊं इससे पहले आप अपनी दासी को यहां से चले जाने को कहिए।"

ही जवाव था। कमरे से वाहर सीढ़ी पर बैठी सिन्धु भी ऊंघ रही थी। मांजी भीतर कमरे में अपने गुरुपुत्र के साथ वातें कर रही थी।

एक विल्ली शायद मछली की जूठन पाने के लालच में दवे पांव रसोई में घुस रही थी। मंगला ने उसे देखा तो भगा दिया।

अचानक सिन्धु दौड़ती हुई आई और मंगला से वोली, "ब्राह्मणी दीदी, आपको मांजी बुला रही हैं।"

"मुझे !" मंगला जैसे परेशान-सी हो उठी। "मुझे बुलाया है ? क्यों ?"

मंगला अवाक भी हुई। उसकी जिन्दगी में आज तक कभी ज़नान-खाने में उसकी वुलाहट नहीं हुई।

आज से कितने ही वर्षों पहले काशीधाम जाते वक्त सिर्फ एक दिन जनानखाने में जा मांजी से भेंट की थी उसने। वस आज तक के जीवन में वही पहली और अंतिम भेंट थी मांजी से मंगला की। उसके वाद काशीधाम से वापस आ जाने के वाद उसे किसी से मिलने की आवश्य-कता ही नहीं रही। इसी रसोईघर में रोज उसके सूर्योदय और सूर्यास्त होते रहे हैं। वर्षा, गर्मी, जाड़ा इन सव ऋतुओं का अलग अस्तित्व न जाने कव का ही उसकी चेतना में लुप्त हो चुका है। किसी को कुछ खवर नहीं है इसकी। सभी आते हैं, समय पर भोजन प्राप्त करते हैं और चले भी जाते हैं। वस इससे अधिक किसी को भी मंगला में दिलचस्पी नहीं है न किसी ने उसके वारे में कुछ पूछा और न उसने कभी जवाव दिया। पर इतने दिनों वाद शायद जवाव देने के लिये उसकी पुकार हुई है।

रसोईघर से वाहर निकलते समय मंगला के पांव जैसे आगे न वढ़ कर पीछे की ओर पड़ते हों। आज से पहले कभी ऐसा हुआ नहीं था, अतः उसे आदत नहीं थी। फिर रात के वक्त उसे रास्ता भी वहुत ऊंचा-नीचा महसूस हो रहा था।

धड़कते दिल से उसने सिन्धु से पूछा, "तुझे कुछ पता है सिन्धु, मुझे क्यों वुलाया है ?"

तकदीर की रेखायें भी शायद बहुत ही कुटिल थीं। मंगला का भाग्य भी कब, किस विधाता पुरुष ने गढ़ा था, कौन जाने। काशीधाम जाते वक्त भी उसका दिल इसी तरह धड़क रहा था। उस दिन भी रात के वक्त उन लोगों को रेल में सवार होकर जाना पड़ा था। पहली गाड़ी में माल-असबाब गया था जिसके साथ गये थे सरकार महाशय और जनाने डब्बे में मंगला तथा कुंजबाला थी। स्टेशन पर कुंजबाला ने पान खरीद कर खाया था। उसने एक पान मंगला को भी देना चाहा था पर मंगला ने इन्कार कर दिया।

कुंजबाला ने पूछा था, "तू पान नहीं खाती, मंगला!"

मंगला ने जवाब दिया, "पति के गुज़र जाने के पश्चात् मैंने कभी पान नहीं खाया, दीदी।"

तिस पर स्टेशन का पान! जो पता नहीं कैसे-कैसे लोगों का छुआ हुआ हो। ट्रेन काशी पहुंची तो पंडे का एक आदमी आकर उन सब को मालिक साहब के खरीदे नये मकान में ले गया। मंगला को हर वक्त डर-सा लगता रहता था। यह कौन-सा देश है, कितनी बड़ी गंगा है! वह एक निपट देहात की रहने वाली लड़की थी, अतः उसे बहुत आश्चर्य हो रहा था कि किस प्रकार रेल में बैठ कर इतनी दूर बाबा विश्वनाथ के चरणों में इतनी जल्दी पहुंच गये।

कुंजबाला बहुत होशियार थी।

कहती "मंगला, लम्बा घूंघट निकाल ले। लड़के लोग आ रहे हैं।"

मंगला लम्बा घूंघट ही काढ़े रहती थी पर कुंजबाला के कहते ही खींच कर थोड़ा और लम्बा कर लेती। मालिक एवं मालकिन के पहुंचने के बाद एक बार जो वह रसोईघर में घुसी तो बाहर आने का कोई चारा ही नहीं रहा उसके लिये। रात-दिन सबके लिये खाना बनाने का काम समाप्त हो जाता तो रसोईघर के सामने बैठी रहती। उसके लिये तो जो कुछ भी थी कुंजबाला ही थी। कुंजबाला ही रसोईघर में आकर खाना ले जाती और सबको परसती थी। मालिक का चेहरा कैसा है यह

भी कभी मंगला ने नहीं देखा था, सिर्फ कुछ-कुछ सुना अवश्य था। मालिक घूमने जाते तो मालकिन साथ जाया करती थी। हां, कभी-कभी कुंजवाला भी चली जाती थी।

एक दिन अचानक ही मालकिन की तवियत खराव हो गई।

उसके वाद तो डॉक्टरों-वैद्यों को दिखाना, दवा-पानी करवाने आदि किसी वात में कसर नहीं रखी गई। कलकत्ता से भी घर के और कई व्यक्तियों को वुलवाया गया। मंगला को तो सिर्फ दूर से लोगों के आने-जाने की आवाज़ और हवा में तैरती दवाओं की गन्ध का अहसास भर ही होता था। आखिर वीमारी ने भयानक रूप धारण कर लिया। तव तो ऐसी हालत हो गई कि वस अव-तव।

उन्हीं दिनों यह कांड हुआ।

गुरुपुत्र ने वताया कि, "यह कांड उन्हीं दिनों घटित हुआ था।"

मालकिन की हालत दिन-व-दिन विगड़ती ही गई। वे वेहोश पड़ी रहती थीं।

एक दिन कुंजवाला ने मंगला से कहा, "अरी अव मांजी अधिक दिनों तक नहीं वचेंगी। आज वैद्य जी वता गये हैं।"

अगर मांजी चल वसीं तो मेरा क्या होगा! नौकरी चली जायेगी। रसोईघर के अंधेरे में वैठी मंगला वस यही एक वात सोचती रहती थी। न गंगाघाट जाना होता न ही वावा विश्वनाथ के दर्शनों को जाना होता। वस खाना वनाना, रात-दिन खाना वनाना। रात कव हुई, दिन कैसे वीता, कुछ भी ध्यान नहीं रहता। रात को और सुवह गरम पानी करना पड़ता था, क्योंकि मालकिन के गरम वैग से सेंक करना पड़ता था। कुंजवाला वताया करती थी कि, "मालकिन छाती और पीठ के दर्द से छटपटा रही हैं।"

एक दिन की वात है। उस वक्त शायद दोपहर थी कि, "वहां कौन है?"

गंभीर गले की आवाज़ सुन मंगला सहम गई और अपने घूंघट को

और भी लम्बा खींचकर दीवार से चिपक कर खड़ी हो गई। वह देख तो कुछ भी नहीं पाई कि कौन बोल रहा है, या यह किसकी आवाज़ थी, यह भी नहीं समझ सकी। उसने सोचा, पुकारने वाले व्यक्ति के चले जाने के बाद वह ओट में चली जाएगी।

इतने में ही उसने सुना, वही आवाज़ किसी से पूछ रही है, "मैं तो पहचानता नहीं, वहां कौन है ?"

मंगला का सारा शरीर थर-थर कांप उठा पर कुछ देर बाद ही उसे लगा मानो दो मन बोझ उसकी छाती पर पड़ा था जो धीरे-धीरे कम हो गया।

भागती हुई कुंजबाला रसोई में आई। आते ही बोली, "अरी, यह क्या किया तूने ? सर्वनाश कर बैठी न।"

मंगला ने सहमकर पूछा, "क्या हुआ ?"

"मालिक के सामने क्यों आई ?"

मालिक ! तो क्या वह आवाज़ मालिक की थी। उसने सिर्फ आवाज़ भर सुनी थी। इसके अलावा उसने देखा तो ज़रा भी नहीं था।

उसने सोचा, जाए और तुरन्त गंगा में डूबकर अपनी लाज-शरम सहित गंगा की धारा में विलीन हो मुक्ति पा जाय। क्या कभी मनुष्य सी मुसीबत में भी पड़ता है ! भरी दोपहरी के वक्त मालिक के इधर आने की ज़रा भी संभावना नहीं थी, क्योंकि अक्सर वे खाना खाकर थोड़ी देर सोया करते थे। उनके सोने के वक्त पूरा मकान सांय-सांय करता रहता। गंगा के पानी को छूकर बहती ठंडी हवा खिड़की के किवाड़ों पर दस्तक देती रहती। उस वक्त न तो कुंजबाला ही मंगला के पास रहती थी न और कोई। एक तल्ला पूरा सांय-सांय करता रहता था। एक हिन्दुस्तानी नौकर आकर जूठे बर्तन-वर्तन मांज जाता था। बस उसके बाद चारों ओर शून्यता एवं आलस्य का साम्राज्य फैल जाता था। एक तल्ले का सम्पूर्ण वातावरण गर्मी और उमस से बोझिल-सा हो जाता था। गलियारे में गीले कपड़े सूखा करते थे, वे भी ज़रा भी नहीं

हिलते थे। सिर्फ एक छिपकली थी जो ऊपर दीवार से चिपकी इस दीवार से उस दीवार पर जाती रहती थी। कभी वह चुपचाप नीचे की ओर यानी मंगला की तरफ देखती रहती। सारे काम निपटाने के बाद जैसे मंगला को कुछ भी काम नहीं रहता था, उसी प्रकार शायद छिपकली को भी कोई काम नहीं रहता था। वे दोनों बहुत देर तक एक दूसरी की ओर देखती रहती थीं। उसके बाद शाम होती। नल में पानी आता। शाम का खाना बनाने के लिए चूल्हा जलाया जाता, फिर खाना बनाना शुरू होता। मालिक ऊपर तल्ले में ही रहते। सिर्फ बीच-बीच में उनके चलने-फिरने एवं खांसने की आवाज़ अवश्य सुनाई पड़ती रहती। तम्बाकू की गंध भी आती। पर आंख से उन्हें आज तक नहीं देखा था।

शाम को मोगरे के फूलवाला आता। आते ही दरवाज़े पर खड़ा हो हांक लगाता, "फूलवाला।"

हांक सुनकर ख़ास सेवक ही जाकर फूलों का ढेर ले आता था। फूलों का जितना शौक था उतना ही शौक रबड़ी का भी था। और था बर्फ का। बर्फवाला भी उसी प्रकार नीचे से आवाज़ लगाता, "बरफ !"

उसके बाद गाने की बारी आती। पर मंगला को गाने के बोल समझ में नहीं आते। हिन्दुस्तानी औरतें न जाने क्या-क्या गाती रहती थीं। कई-कई औरतें एक स्वर से गाती थीं। बड़े सवेरे ही उनका गाना शुरू हो जाता था। कुंजबाला बताती थी कि आटा पीसते वक्त औरतें गाना गाती हैं।

इसके अलावा वह देखा करती गंगा के तट पर होने वाली भीड़ को। सुबह-शाम दोनों वक्त पिछली गली से होकर कितने ही लोग गंगा तट पर आया करते थे। एक पहर रात रहते ही लोगों का आना शुरू हो जाता था। गंगा को जाते लोग भजन गाते हुए चलते थे। मंगला सुनती रहती थी बहुत से लोगों के चलने की आवाज़ तथा उनके गले से निकलती स्वर-लहरी। बीच-बीच में एक स्वर में सभी पुकार उठते, "बाबा विश्वनाथ की जय, जय विश्वनाथ बाबा !"

मंगला ने कुंजवाला से एक दिन पूछा, "दीदी, इतने दिन काशी आए हो गए, क्या एक दिन भी बाबा विश्वनाथ के दर्शन के लिए चलना संभव नहीं हो सकता ?"

कुंजवाला ने जवाब दिया था, "काशी कहीं भागी तो जा नहीं रही है, किसी दिन चलेंगे।"

मालिक के शुरू के कुछ दिन तो अच्छी तरह गुज़र गए। रोज नौका-विहार को जाया करते थे वे।

एक दिन मालिक ने हुक्म दिया, "काशी में आकर यहां की शहनाई सुनने से क्यों वंचित रहा जाए।"

बस, तुरन्त शहनाई सुनने का प्रबन्ध किया गया। पर शहनाई कैसी बजती है यह बेचारी मंगला न जान पाई। मंगला को तो उस दिन बस खास तौर से खाना बना देना पड़ा था।

कुंजवाला ने कहा, "नौका में शहनाई बजेगी, भला तू कैसे सुनेगी ?"

दूसरा राग छेड़ते जाते थे। विहाग एक बार, पुरिया दो बार लेकिन दरबारी और कनाड़ा कई बार सुना।

उसके लिए मालिक की फरमाइश होती, "बजाओ, बजाओ, यही राग फिर से बजाओ।"

हुजूर को अच्छा लगी यही बड़ी बात थी। साथ में पूरियां, रबड़ी, एवं अन्य कई प्रकार की मिठाइयां थीं। सभी ने खाना खाया। खाना खाकर दुबारा गाना-बजाना शुरू हुआ। मालकिन राग-स्वर की अधिक जानकारी नहीं रखती थीं।

उन्होंने कुंजवाला से पूछा, "बहुत अच्छा बजा रहे हैं न री !"

कुंजवाला ने कहा, "बहुत अच्छा लग रहा है मालकिन।"

मालकिन ने कहा, "तीन सौ रुपये नगद दिये हैं, फिर अच्छा नहीं बजायेंगे भला ? तेरे मालिक ने चुनिन्दा लोगों को बुलाया है।"

उस वक्त शायद रात के नौ बज चुके थे। सब ठीक-ठीक ही था। मालिक भी बहुत अच्छे मूड में अधलेटे से शहनाई सुनने में मग्न थे। अचानक दक्षिण की ओर बादल घिर आये। देखते-ही-देखते पूरा आकाश बादलों से घिर गया। मालिक के शरीर पर भी दो बूंद टपकीं तब होश हुआ उन्हें। और उसी समय वे चौंक पड़े। तुरंत उठ खड़े हुए। शहनाई बजनी बंद हो गई। छाता-पाता भी नहीं लाये थे। बोले, "नौका जल्दी किनारे लगाओ।"

नौका को जल्दी-जल्दी खेते हुए घाट की तरफ ले जाया गया पर तब तक मूसलाधार बारिश शुरू हो चुकी थी।

असमय की बरसात थी फिर भी थोड़ी देर बरसकर ही नहीं रुकी। एकदम बरसती ही रही उमड़-घुमड़ कर। नौका उस समय दशाश्वमेध घाट से बहुत दूर थी। नौका की छत बहुत चू रही थी। मालकिन बहुत डर गईं कि कहीं नौका न उलट जाय। अंत में नौका तो नहीं उल्टी पर बरसात जरा भी कम नहीं हुई उस रात। सिर से पैर तक तर-बतर होकर लौटे थे मालकिन एवं मालिक। उस वक्त रात भी बहुत हो

चुकी थी।

सदर दरवाजे का कड़ा जोरों से खटखटाया गया।

मालिक ने पूछा था कि भीतर कौन है?

पास खड़े सरकार बाबू ने कहा, "मंगला है।"

"मंगला! मंगला कौन?"

"हुजूर, अपना खाना बनानेवाली।"

दरवाजा खोलते ही मंगला ओट में हो गई थी। कुंजबाला जल्दी से भीतर जा लालटेन जला लाई थी।

पर मालकिन का शरीर बुरी तरह कांप रहा था। इतनी रात थी फिर भी गरम पानी करना पड़ा, तेल गरम करना पड़ा था। पैरों में गरम-गरम तेल मालिश करवाकर मालकिन सो गई थीं। लेकिन दूसरे दिन उन्हें बहुत जोर का बुखार हो गया। बुखार की तेजी के कारण मालकिन ने प्रलाप शुरू कर दिया।

सुबह गुरुदेव आये थे। उन्होंने कहा, "यहां अच्छे डॉक्टरों की कमी नहीं है लेकिन अच्छे वैद्य को बुलाना ही बेहतर है। मैं जाता हूं, अच्छे वैद्य को भेज देता हूं।"

बीस साल पहले की घटना है। उस वक्त पुत्र गोद नहीं लिया था। मालकिन को सारी बातें अच्छी तरह याद हैं। उन्हें याद है कि महीनों वे उस परदेश में खाट पकड़े रही थीं। सन्निपात की बीमारी थी। हिलना-डुलना भी मना था। कलकत्ते से लोग आते और चले जाते मालकिन की हालत देख कर। मालिक काशी छोड़ कर कहीं आ-जा नहीं सकते।

गुरुपुत्र ने कहा, "जिस समय आप बिस्तर से लगी हुई थीं उसी अवस्था में यह घटना घटित हुई।"

"कौन-सी घटना?"

पीछे आया। वह बहुत पीछे धीरे-धीरे आ रहा था। मझ दोपहर का समय था। बाहर सब ओर सांय-सांय हो रही थी, मानो समूचा काशी शहर ही ऊंघ रहा हो। गंगा के पानी पर तेज धूप पड़ रही थी पर भीतर घर में ठंडक थी। मोटी-मोटी दीवारें हैं जो नम एवं ठंडी हो रही हैं। सोंधी मिट्टी की महक के साथ वातावरण धुंध से भरा मालूम देता है।

मालकिन को बेदाना का रस देकर कुंजवाला उनकी खाट के बगल ऊंघ रही थी।

बाथरूम में जाकर ठंडा पानी डालकर सिर धोया मालिक ने। उन्होंने ऐसा क्यों किया वही जानें। अगर ठंडा पानी मांगते तो खास सेवक वहीं हाजिर कर देता। आज शायद भांग की मात्रा अधिक हो गई। बाथरूम से निकलकर वे वापस सीढ़ियां चढ़ना ही चाहते थे कि अचानक उन्होंने देखा कि रसोईघर के सामने ठंडे फर्श पर आंचल बिछा-कर कोई सोया पड़ा है। सोया है तो सोया रहने दो। अगर और कोई दिन होता तो वे ऐसी बात को देखकर भी अनदेखा कर देते। उन्हें पुतली-माला की याद आई। लेकिन अचानक उनकी नजर उसके पांवों पर पड़ी। सफेद गुदगुदे दो पांव। नशे ने शायद अपना रंग जमाना शुरू कर दिया था।

आदतन कह उठे, "कौन ?"

पीरजादा तुरन्त सामने आ खड़ा हुआ। बोला, "हुजूर, आपको सहारा दूं ?"

मालिक ने जोर से डांटा, बोले, "हट, यह बता वह कौन है ?"

पीरजादा स्तब्ध-सा होकर बोला, "हुजूर, वह मंगला है।"

इस चीख-पुकार से अब तक मंगला की नींद टूट चुकी थी। जल्दी-जल्दी आंचल संभालने में घबराहट के मारे साड़ी और अस्त-व्यस्त हो गई। यह एक बहुत ही लज्जा-जनक बात थी। कपड़े ठीक करके वह भागकर रसोईघर में घुस गई और दोनों हाथों से कसकर अपना कलेजा भींचे खड़ी रही। उसका दिल बहुत जोर-जोर से धड़क रहा था।

ये बातें बहुत वर्षों पहले की हैं। उसके बाद तो इतनी बरसातें बीत चुकी हैं कि काल की छाती पर से समय के निशान ही मिट गए पर साथ ही कितने ही नये निशान बन भी गए। सब कुछ याद नहीं है। करीब एक साल के उस समय ने तूफान की तरह मंगला के सम्पूर्ण जीवन को तहस-नहस कर डाला था। वह गई थी एक महीने के लिए और वहां लग गया एक साल। एक साल बाद सभी लौट आए। आने के बाद पुत्र गोद लिया गया। उसी पुत्र की शादी भी की गई। पर मंगला एक बार काशी से आई तो फिर नहीं गई। कुंजबाला की मृत्यु हो गई। कुंजबाला की बूढ़ी मां ही खाना बनाया करती थी पर बेटी के मरने के बाद बुढ़िया ने काम करने से मना कर दिया। बस तभी से मंगला रसोईघर से बाहर नहीं निकली।

काशी से लौटने पर जिसने भी मंगला को देखा उसी ने टोका, "अरी, यह क्या चेहरा हो गया तेरा? कैसी हालत कर ली अपनी?"

जगत्तारण बाबू ने पूछा, "कैसी कटी वहां, बड़े मालिक?"

दुलालविहारी बाबू ने कहा, "मालिक, आपके चले जाने से हम तो बिलकुल अनाथ हो गए।"

कर्त्ता बाबू यानी मालिक ने पूछा, "नूलो मल्लिक ने कोई गड़बड़ तो नहीं की?"

जगत्तारण बाबू और दुलालविहारी बाबू दोनों ने पुतलीमाला के घर पर पारी-पारी पहरा दिया था। आदमी की तो मजाल ही क्या, मक्खी तक पर नहीं मार सकती थी वहां।

जगत्तारण बाबू ने पूछा, "खाने-पीने में तो कोई असुविधा नहीं हुई न?"

दुलालविहारी बाबू ने पूछा, "खाना बनाने के लिए तो कोई नयी औरत गयी थी न?"

मालिक बोले, "हां।"

खास सेवक से जगत्तारण बाबू ने पूछा, "क्यों रे, मालिक क्या किया

करते थे वहां ? अपना वक्त कैसे गुजारते थे वे ?"

पीरजादा ने कहा, "अजी, भंग का शरवत पीते थे खूव। पिस्ते-वादाम डालकर तैयार कर दिया करता था।"

"क्या, खूव पीया करते थे ? रोज़ कितने गिलास ?"

"किसी दिन अधिक पीते तो तीन-चार गिलास भी पी लेते थे।"

"तव तो वेटे तूने भी खूव चढ़ाई है ?"

पीरजादा दांतों तले जीभ दवाकर कहता, "नहीं हुजूर, कैसी वा करते हैं आप ?"

जगत्तारण वावू ने पूछा, "सिर्फ भांग का शरवत ही पीते ? औ यह-वह यानी—।"

खास सेवक इशारा समझ जाता है लेकिन फिर भी कहता है, "यह वह का मतलव ?"

दुलालविहारी वावू ने कहा, "वेटा, हमसे ही वनता है ! मालि जैसा आदमी एक साल ब्रह्मचारी वनकर रहा है, क्या तू हमें यह सम झाना चाहता है ? उनकी पत्नी तो वीमार पड़ी थी।"

खास सेवक भी मालिक के लायक ही था। लाख कोशिश करने प भी उसके मुंह से एक लफ्ज भी उगलवाना आसान नहीं था। घूस क रकम अवश्य ऐंठ लेता था पर क्या मजाल जो भीतरी वातें किसी वोल दे। वह वताता भी तो वस कुछ-कुछ।

एक दिन वहुत वड़ी मुसीवत का सामना करना पड़ा। मालकि की हालत उस दिन ऐसी हो रही थी मानो दमे की मरीज हों। सार घर उद्विग्न हो उठा था। मालिक को दिवानिद्रा नहीं आई। वे अप कमरे में चहलकदमी करने लगे। दो वार शरवत भी पीया। पर उस भी प्यास नहीं मिटी। वोले, "एक गिलास और वना।"

उस समय डॉ० चौधरी का इलाज चल रहा था। होम्योपैथिक दव की जगह अव एलोपैथिक ने ले ली थी। पूरा घर मानो अस्पताल व गया था। दवा एवं डॉक्टरों की सरगर्मी थी चहूं ओर। अचानक वीमारी

के बिगड़ जाने से डॉक्टर लोग भी घबरा गये। बरसात में जरा-सा भीगने से यह हालत भी हो सकती है, उन लोगों ने सपने में भी नहीं सोचा था। उस समय शाम हो रही थी। डॉक्टर चौधरी ने कहा, "अब मुझे आसार अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं। मरीज बिल्कुल कमजोर हो गया है। अब खून देना पड़ेगा।"

"किसका खून ?"

डॉक्टर चौधरी ने कहा, "अच्छे, स्वस्थ व्यक्ति का खून।"

"यहाँ ऐसा कौन है ? किसके खून से काम चलेगा ? इतने कम समय में भला किसको पकड़कर लाया जाय ? सिर्फ स्वजातीय होने से ही काम नहीं चलेगा बल्कि हमारे गुरुदेव की आज्ञा लेनी भी आवश्यक है।" मालिक ने कहा।

गुरुदेव आये और बोले, "मेरे यजमानों में से ही किसी को ढूंढना पड़ेगा।"

मालिक ने कहा, "डॉक्टर साहब, मेरी पत्नी बहुत धर्म-परायणा है। हर किसी के खून से उसका खून अपवित्र हो जायेगा।"

गुरुदेव ने कहा, "आप चिन्ता न करें, मैं जल्दी ही सारा इंतजाम किये देता हूं।"

डॉक्टर चौधरी ने कहा, "लेकिन आपको जो कुछ करना हो आज रात तक कर डालिये क्योंकि मरीज की हालत बहुत नाजुक है।"

गुरुदेव बाहर निकले। कमरे से बाहर अंधेरा हो चुका था। ऊपर की ओर तेल की चिमनी जल रही थी। उसी रोशनी के सहारे वे धीरे-धीरे सीढ़ियां उतर रहे थे कि एकदम अचानक उसके सामने आ खड़े हुए। चेहरा अंधेरे के कारण अस्पष्ट दीख रहा था। वह एक मैली साड़ी पहने थी तथा रसोईघर से भंडारघर में जा रही थी कि ठिठककर रह गई।

गुरुदेव ने पूछा, "कौन हो तुम ?"

कुंजबाला उसी वक्त बगल से गुजरी। वह गरम पानी लेकर ऊपर

जा रही थी। वह बोली, "जी, यह मंगला है।"

गुरुदेव कुछ देर खड़े रहे। उसके बाद जिस राह आये थे वापस उसी राह लौट गये यानी वापस ऊपर चले गये। ऊपर जाकर मालिक के कान में कहा, "एक व्यक्ति मैं तलाश चुका हूं। एक बार उसे डॉक्टर साहब को दिखाना पड़ेगा—खून-परीक्षण के लिये।"

मालिक ने पूछा, "कौन है वह ?"

डॉक्टर चौधरी उस दिन बहुत रात गये घर गये थे। उस रात सिर्फ खून ही नहीं चढ़ाया गया बल्कि कुछ घंटों में ही बहुत से अनुष्ठान आदि निपट गये थे। मालकिन तो बेहोश बिस्तर पर पड़ी थीं। कितना ही आर्तनाद, कितनी आशंकाएं, कितनी ही अशांति की समाधि उसी रात काशी के उस पुराने मकान की चारदीवारी में घटित हो चुकी। कोई भी नहीं जान पाया कि मालकिन का जीवन बचाने के लिये किसके खून का संमिश्रण हुआ उस दिन।

मांजी ने पूछा, "उसके बाद ?"

समूचे घर में उस वक्त स्तब्धता-सी छायी थी। लड़का भी घर में नही है। वह भी बाहर गया है। जगत्तारण बाबू भी साथ गये, नफर भी गया। लड़का घर में होता तो रात को बहुत देर तक लाइट जलती रहती। खास सेवक पांचू भी जागता रहता था। जनानखाने या मर्दानखाने कहीं से भी किसी प्रकार की आवाज आने का कोई प्रश्न ही नहीं, फिर भी मालकिन को नींद नहीं आती। रात को सिरहाने की खिड़की खोल देने से लड़के के कमरे में रोशनी जलती दिखाई पड़ती थी। कितनी ही देर बाद जगत्तारण बाबू जाते, तब खास सेवक पांचू दरवाजा बंद कर लेता और कुछ देर बाद लाइट भी बंद हो जाती।

मांजी सुबह उठ बहू के कमरे के सामने जाकर आवाज़ देतीं, "बहू !"

वहू आकर सामने खड़ी हो जातीं और पूछतीं, "मुझे बुलाया था, मांजी ?"

"कल लड़का कमरे में आया था ?"

इस प्रसंग पर वातचीत करते हुए वहू को वहुत लाज लगती थी। पर फिर कहतीं "वे तो आते ही नहीं कभी।"

"लेकिन उसके कमरे की वत्ती तो रात को जल्दी ही वन्द हो गई थी ?"

फिर मांजी खास सेवक पांचू को पुकारतीं। उससे पूछतीं, "रात लड़का इधर सोने के लिये क्यों नहीं आया ?"

पांचू ने कहा, "मैंने तो कहा था, भीतर चलिये।"

मांजी ने कहा, "पर तू साथ लेकर क्यों नहीं आया ?"

पांचू ने कहा, "वे वहीं दरी पर ही सो गये थे, अतः मैंने वहीं मच्छरदानी लगा दी।"

मांजी ने कहा, "अच्छा-अच्छा ! आज जरूर भीतर ले आना, समझे ? अगर ऐसा नहीं किया तो फिर तेरा काम ही क्या है ?"

उसके वाद वहू से वोलीं, "वहू, तुम जरा सख्ती से पेश नहीं आ सकतीं ?"

वहू चुपचाप सिर झुकाये खड़ी रहती है। सिर उठाकर वह सास को कोई भी उत्तर नहीं दे पाती।

वहूरानी के समस्त गुण, उसका रूप, सव कुछ इस घर में आने के वाद से दिन-व-दिन निस्तेज हुआ जा रहा है। सास ने पहले-पहल वहू को देखा था तो मन-ही-मन वहुत खुश हुई थीं। उन्होंने अपने मन में सोचा, "खूवसूरत वहू है, अतः लड़के का वाहर का नशा कुछ ही दिनों में टूट जायेगा। यद्यपि वंशानुगत नशा है, फिर भी लड़के का तो इस वंश के खून के साथ कोई संम्पर्क नहीं। किसी गांव के किसी गरीव घर का लड़का है। मालकिन ने काशी से लौटते ही इस दिशा में खोज करानी शुरू कर दी थी। उनको अच्छे कुल का लड़का चाहिये था। ऐसा लड़का

होना चाहिये जिसके खून में इस वंश का दोष राई भर भी न हो। मालिक फिर से जगत्तारण वावू के साथ वगान-वाड़ी जाने लगे थे।

एक दिन रात के समय मालकिन ने वात चलाई। वोली थीं, "एक वार आपको भी लड़का देख लेना चाहिये।"

मालिक वोले, "तुमने देख लिया, वस ठीक है। अव मैं देखकर क्या करूंगा?"

मालकिन ने कहा, "अच्छे कुल का है, मां-वाप का चरित्र भी अच्छा है, मुझे तो उसमें कोई दोष नजर नहीं आता।"

मालिक ने कहा, "कुछ दिनों और सव्र करो न, इतनी हड़वड़ाहट किसलिये कर रही हो? मैं आज ही तो मर नहीं रहा हूं?"

मालकिन ने कहा, "पर मैं तो मर सकती हूं?"

मालिक ने कहा, "आज यह मरने-जीने की वातें क्यों उठ रही हैं?"

"मरने-जीने के वारे में भला कौन कुछ कह सकता है? मैं तो उस दिन मर के भी वच गई।"

मालिक वोले, "वावा विश्वनाथ की दया-वश तुम वच गयी हो, अव वह वातें दोहराने से क्या लाभ?"

मालकिन ने कहा, "कुछ भी हो, मैंने तय कर लिया है तो तुम्हें भी एक वार देखना ही पड़ेगा।"

मालिक ने पूछा, "वह है कहां?"

मालकिन वोलीं, "यहीं वुला रखा है मैंने, तुम्हें दिखाने के लिए ही।"

मालिक क्षण भर न जाने क्या सोचते रहे। फिर वोले, "कुछ दिन और ठहर जाओ। फिर मैं खुद ही सव देख-भाल कर कुछ तय कर लूंगा।"

दूसरे दिन मालकिन ने लड़के को सुवह-सुवह ही वुलवा लिया। छोटा-सा ववुआ-सा वच्चा था। लड़के का वाप नहीं था। आर्थिक स्थिति

उसके साथ एक छोटा लड़का भी था।

जगत्तारण बाबू बैठक में ही बैठे थे। दुलाल बिहारी बाबू भी बैठे थे उम्मीद लगाये पर भीतर से कोई खबर ही नहीं मिल रही थी। मालिक को उस वक्त नीचे आने की फुरसत ही नहीं थी। कमरे के भीतर उस वक्त मालकिन के साथ विशेष बातचीत हो रही थी। सुबह से खाना न पीना, दोनों ही बातें करने में व्यस्त थे।

रसोई घर में शिशु की मां खाना लिए बैठी थी।

वह मंगला से कहती है, "दीदी, आज मालिक ने खाना कैसे नहीं मंगवाया ?"

मंगला अपने मन से आज खाना बना रही थी।

शिशु की मां ने फिर कहा, "आज मालिक तथा मालकिन में कमरे के भीतर ऐसी क्या बातें हो रही हैं जो न खाना न पीना ?"

जगत्तारण बाबू ने कहा, "भगा दो, भगा दो भूषण इन्हें यहां से।"

दुलालबिहारी बाबू ने भी कहा, "ये लोग कहां से आये हैं ?"

जगत्तारण बाबू ने कहा, "पता नहीं कहां से चले आये मरने को इन्हें पता है कि शहद है यहां, अतः भिनभिनाते हुए चले आये।"

भूषण सिंह ने कहा, "आगे जाओ यहां से। यहां कुछ नहीं मिलेगा भागो यहां से।"

नफर को वे सब बातें याद नहीं हैं। वह उस वक्त बहुत छोटा था डेढ़ या दो साल का रहा होगा। यहां से पैदल चलते-चलते गंगा किनारे यात्रियों के विश्राम करने के घर में जाकर उन लोगों ने बहुत देर विश्राम किया था। दिन पूरा बीतने को आया। अब वे कहां जायें उनकी समझ में नहीं आ रहा था। उस आदमी ने, जो बच्चे के साथ आया था, लड़के को एक पैसे की लेमनचूस खरीद दी थी। लड़के ने लेमनचूस चाट-चाट कर जीभ लाल कर ली थी। उसके बाद भूख से छटपटा कर पता नहीं

वह कब सो गया।

मालिक ने दो-एक बार बाहर उन्हें देखने के लिए आदमी भी भेजे। पयमन्त से बोले, "जा देखकर आ तो, काशी से कोई आया या नहीं? साथ एक छोटा लड़का भी है।"

पयमन्त ने लौट कर बताया, "जी, अभी तक तो कोई नहीं आया।"

दो बार फिर भेजा था पैमंत को। दो बजे तक देखा लेकिन कोई नहीं आया।

उसके बाद अनुष्ठान शुरू किया गया। कुल-पुरोहित ने अनुष्ठान की क्रिया आरम्भ कर दी। हवन हुआ, यज्ञ हुआ। मालिक एवं मालकिन ने गठजोड़े सहित संतान गोद ली। छोटा प्यारा-सा लड़का। मुंडन भी करवाया। अनुष्ठान के अन्त में मालकिन ने उसे अपनी गोद में बैठाकर अपने हाथ से खाना खिलाया।

सब काम निपट जाने के बाद मालिक बाहर आए।

जगत्तारण बाबू और दुलालविहारी बाबू इतनी देर तक उनके इन्तजार में बैठे थे।

दोनों ही बोले, "आपने बहुत अच्छा किया मालिक जो बेटा गोद ले लिया। भला संतान बिना भी घर कोई घर है! बहुत अच्छा किया।"

सन्तान का नया नाम रखा गया सुवर्णनारायण। कुलपदवी सेन। यानी सुवर्णनारायण सेन।

जगत्तारण बाबू ने कहा, "अब एक दिन भोज का आयोजन हो जाय, मालिक। सेन वंश को वंशधर प्राप्त हुआ है तो इस खुशी में आत्मीय-जन भी क्यों न हिस्सा बंटायें?"

आखिर यही तय हुआ कि किसी भोज का आयोजन भी किया जाए। उस दिन आत्मीय-स्वजन अभ्यागत किसीको भी निमन्त्रित करना बाकी नहीं रखेंगे। उसी दिन सभी नयी सन्तान का मुंह देख कर आशीर्वाद देंगे।

लेकिन अचानक ही शाम को मालिक बाहर नि

बाहर आते ही कोई उनके सामने आ खड़ा हुआ। मालिक ने सोचा, शायद कोई भिखारी-विखारी होगा। लेकिन उस व्यक्ति ने झुककर मालिक के चरण-स्पर्श किए।

मालिक ने पूछा, "कौन ?"

"हुजूर, मैं काशी से आया हूं।"

उस व्यक्ति की बात सुनते ही मालिक एकदम परेशान-से हो उठे। बोले, "लाए हो ?"

व्यक्ति बोला, "जी हुजूर, यह देखिए। इसका नाम नफर है।"

हाथ पकड़ बच्चे को अपने सामने खड़ा किया मालिक ने।

फिर पूछा, "क्या नाम रखा है ?"

"जी, हम लोग इसे नफर कहकर पुकारते हैं।"

"नफर ?"

फिर बोले, "इतनी देर क्यों हुई ?"

"जी, मैं पहुंच गया था सुबह ही पर उस वक्त आप व्यस्त थे। मैं अभी दुबारा आया हूं आपके घर।"

इस बीच नफर मालिक के कोट की बटन से खेलने लगा था। मालिक ने बच्चे के गालों को चुटकियों में ले हौले से दबाया। फिर बोले "बहुत चंट हो गया दीखता है। है न ?"

"जी हां, बहुत चालाक हो गया है। इसकी शैतानी से तो सभी परेशान हैं। देखिएगा, बड़ा होकर कैसा बुद्धिमान होगा।"

मालिक ने कहा, "अच्छा, अब तुम जाओ।"

कहकर खजांचीखाने से सरकार बाबू से पांच सौ रुपये लिए। रुपये लेकर उस व्यक्ति को दे दिए। बोले, "अब सब चुकता हो चुके हैं।"

सरकार बाबू ने पूछा, "ये रुपये किसके नाम लिखूं, हुजूर ?"

मालिक ने कहा, "जिस पते से मनीआर्डर द्वारा काशी रुपये भेजे जाते थे, उसी दुर्गा-मन्दिर के नाम खर्च लिख दीजिए।"

सरकार महाशय मन्दिर के पते पर अव तक हमेशा रुपये भेजते आए हैं। मालिक के खर्चे से काशी में दुर्गा मन्दिर का संस्कार हो रहा है। उसी खर्चे में पांच सौ रुपये और जुड़ गए।

मालिक ने कहा, "अव अगले महीने से रुपये भेजने की आवश्यकता नहीं है। आखिरी किश्त थी वस यह।"

उसके वाद मालिक अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे। अव घर में नई सन्तान आ चुकी थी। उसी की देखभाल में सभी व्यस्त रहने लगे। मालकिन वोलतीं, "देखना, लड़के को कहीं ठंड न लग जाए।"

कभी लड़का अचानक ही रो पड़ता। वस मालकिन एकदम नाराज़ होकर आवाज़ लगातीं, "अरी सिन्धु, मेरा वेटा रो क्यों रहा है ?"

सिन्धुमणि आकर वताती, "नफर ने मारा है।"

"नफर ? कौन है नफर ?"

सिन्धुमणि वताती, "जी, एक लड़का है, पता नहीं कहां से आ गया इस घर में ? मर्दानखाने में वह रहता है और मुन्ना वावू के साथ खेलता रहता है।"

"तुम लोग किसलिए हो फिर ? ज़रा भी सम्हाल नहीं रखतीं। चाहे जो आकर मारपीट कर जाता है।"

और दरअसल रोज़-रोज़ की इसी चख-चख से मालिक का शरीर टूट गया। इस घुटन से वचने के लिए वे इधर-उधर घूम-फिरकर अपना समय गुजारते थे। कभी यार-दोस्तों को लेकर वाग वाली हवेली में चले जाते थे। पर फिर भी उनके हृदय को किसी प्रकार शांति नहीं मिलती। भांग पीना वनारस में ही शुरू किया था पर यहां आकर भी वह उनसे छूटी नहीं वल्कि व्यसन वन गई।

मां जी हमेशा शिकायत करती रहतीं। वे कहतीं, "आप तो लड़के पर ज़रा भी ध्यान नहीं देते। उसके पढ़ने-लिखने का कोई इन्तजाम नहीं करते। आखिर उसे मूर्ख रखने का इरादा है क्या ?"

मालिक कहते, "अभी से ही पढ़ाई-लिखाई करेगा ?"

"अगर अभी से ध्यान न दिया गया तो वह कुछ भी न सीख पाएगा। आप एक अच्छा-सा मास्टर रख दीजिए न उसके लिए।"

"मास्टर ! अपने जगत्तारण बाबू बहुत अच्छी तरह पढ़ा सकते हैं। वे बी० ए० पास हैं।"

फिर कुछ देर चुप रहने के बाद बोले, "तब तो फिर वह दोनों एक साथ उन्हीं से पढ़ लिया करेंगे।"

"यह दो जनों की बात कहां से उठी ? और दूसरा कौन है ?"

"मुन्ना और नफर।"

मांजी गुस्से में बोलीं, "ओह, मेरे बेटे के साथ नफर पढ़ेगा ! कहां का है, कौन है, जिसका कुछ अता-पता नहीं उसकी पढ़ाई-लिखाई को लेकर आपको इतना सिर-दर्द क्यों हो रहा है ? मैं पूछती हूं, कौन है वह ?"

पर मालिक इस प्रश्न का जवाब हमेशा टाल जाते। "जब मुझ पर उसकी जिम्मेदारी आ ही पड़ी है तो क्या बुरा है अगर वह भी मनुष्य बन जाय। कौन है, इससे क्या करना है ?"

छोटेपन से ही नफर बहुत जिद किया करता था। चीखकर-चिल्लाकर, ऊधम मचाकर, पूरे घर को सिर पर उठाये रखता था। वह कहता 'उसके लिए जूते मंगवाए गए हैं, तो मेरे लिए क्यों नहीं मंगवाये गए ?"

खजांची बाबू को उसकी बातें सुनकर बहुत गुस्सा आता। वे कहते, "उसके लिए जो-जो चीज़ें आएंगी वे ही तेरे लिए भी आनी आवश्यक हैं क्या ? आखिर तू है कौन ?"

नफर रोने लगता, कहता, "मैं कुछ भी नहीं हूं ?"

मालिक के कानों तक भी यह शोरगुल पहुंचे बिना नहीं रहता। वह कहते, "जब मुन्ना के लिए जूते आए हैं तो फिर इसे भी क्यों नहीं मंगाकर दिए ?"

अंतिम दिनों में वे बिस्तर से उठ नहीं सकते थे पर सुनते सब कुछ रहते। जब घुटन सह नहीं सकते तो खजांची बाबू को अपने पास बुल-

खाते और कहते, "वह जो कुछ मांगे वह सब कुछ उसे आप मंगवाकर देंगे, समझे न ?"

"जी हुजुर, मुन्ना बाबू की बराबरी करता है हर बात में।"

मालकिन के हुक्म से रोज़ नई-नई चीजें आतीं बाजार से। आज गाड़ी, कल खिलौने तो परसों कपड़े-लत्ते आते ही रहते। मुन्ना बाबू के लिए किसी वस्तु की कसर नहीं रहती थी। पर नफर देखते ही छीन लेता था। सिन्धु देखती तो चिल्लाती, "ऐ छोकरे, भाग यहां से। निकल-निकल।"

नफर भी उसी तरह जवाब देता, "क्यों ? क्यों निकलूं ?"

"निकलेगा नहीं तो क्या यहीं खड़ा रहेगा ? भाग यहां से। मुन्ना बाबू खाना खायेंगे।"

"मेरी इच्छा, मैं जाऊं या रहूं। तेरा क्या आता-जाता है इसमें ? मुन्ना खाएगा तो मैं नहीं खाऊंगा क्या ? मुझे जैसे भूख ही नहीं लगती।"

सिन्धु आश्चर्य सहित अपने गाल पर हाथ रखकर कहती, "हाय राम, और सुनो इस छोकरे की बात ! हुंह, भूख लगी है इसे ! अरे, भूख लगी है तो रसोईघर में क्यों नहीं जाता ?"

नफर कहता, "फिर मुन्ना ही यहां क्यों खाएगा ?"

"वह तो इस घर के मालिक का लड़का है, पर तू कौन है रे छोकरे जो मुन्ना बाबू की बराबरी करता है ?"

अब नफर को बहुत जोर का गुस्सा आ जाता। वह कहता, 'वह सब तो बाद की बात है पर तू मुझे छोकरा-छोकरा क्यों कर रही है री छिनाल ?"

इतना कह झट चिकोटी काटकर नफ़र वहां से नौ-दो-ग्यारह हो जाता।

पर मालिक की मृत्यु के बाद तो नफ़र की ज़िद सीमा से बाहर हो गई। बात-बात में गुस्सा हो जाना, रोना। मुन्ना स्कूल जाता है तो वह भी जाएगा, यह ज़िद करना। मुन्ना बाबू को जगत्तारण बाबू पढ़ाते हैं

तो नफ़र भी उनसे पढ़ेगा। मुन्ना बाबू तब छोटे ही थे। उन्हीं दिनों एक दिन वे दोनों आपस में झगड़ लिए। झगड़ा भी ज़ोरदार ही हुआ। लट्टू के लिए हुई लड़ाई। नफर मुन्ना बाबू का लट्टू चुराकर भाग निकला था। मुन्ना बाबू जब उसके पास जाकर अपना लट्टू वापस मांगने लगे तो उसे तानकर एक घूंसा दे मारा।

बस फिर क्या था। मुन्ना बाबू ने तो रो-रोकर सारा घर सिर पर उठा लिया।

"क्या हुआ रे ? क्या हुआ ?"

घर के सभी लोग दौड़ पड़े नफर के कमरे की तरफ। मुन्ना बाबू की नाक से खून बहने लगा था।

"किसने मारा है रे ? किसने मारा है मुन्ना को ?"

नफर ने निडरतापूर्वक कहा, "मैंने।"

"तूने, तेरी इतनी हिम्मत कि तू मुन्ना बाबू पर हाथ उठाता है ?"

कहकर किसी ने चटाक से एक चांटा नफर के गाल पर जड़ दिया और बहुत ही लाड़ सहित मुन्ना बाबू को गोद में उठाकर ले गया। पर नफर ज़रा भी रोया नहीं। बस गुमसुम कुछ देर बैठा रहा। उसके बाद सीधा रसोईघर में गया, और तेज़ स्वर में बोला, "ऐ शिशु की मां ! भात दो मुझे। मुझे भूख लगी है।"

अपना सारा आक्रोश वह जैसे भात खाकर ही भुला देना चाहता है।

पर शिशु की मां भी उसे डांट देती। कहती, "भाग यहां से। सुबह-सुबह भात बनाकर रख छोड़े हैं तेरे लिए। भाग, बाद में आना।"

इसके बाद दिन यों ही गुज़रते रहे। यहां तक कि बड़े बाबू यानी मुन्ना बाबू की शादी भी हो गई। नई दुल्हन आई घर में। फिर बड़े बाबू बुजुर्ग होते गए, साथ ही उनका शरीर भी भारी पड़ता गया। जगत्तारण बाबू बराबर आते रहे बड़े बाबू से बात करने के लिए। निःशब्द एवं निर्विवाद इतना सारा बदलाव कब, कैसे आ गया, इस ओर

किसी का भी ध्यान नहीं गया। यहां तक कि नफर का भी नहीं। नीचे तल्ले की अंधेरी कोठरी में पड़े-पड़े न जाने किस सुराख से होकर उसके सभी अधिकारों की अनिवार्यता तक निःशेष हो गई, इस पर भी अब नफर दिमाग नहीं खपाता था। अब तो बस बड़े बाबू कभी-कभी बुला लेते हैं, बस वही एक तृप्ति है मन में। कुत्ते की तरह पूंछ हिलाता हुआ जाकर कुछ क्षणों के लिए पुराने दिनों के कुछ अंशों को फिर से जी लेता था।

अब कोई भी यह नहीं पूछता था, "वह कौन है ?"

अब वह रसोईघर में जाकर झगड़ा भी नहीं करता।

अब कभी नहीं कहता, "मुझे मछली क्यों नहीं मिली ? क्या मैं इस घर का कोई नहीं हूं ?"

अब तो नफर चुपचाप भात खाकर चुपचाप अपनी कोठरी में जाकर सो रहता है। उसके बाद उसे ज़रा भी याद नहीं रहता कि कहां बड़े बाबू हैं, या उसके कपड़े-लत्ते बने हैं या नहीं आदि, बातों का उसे ज़रा भी खयाल नहीं रहता। सिर्फ छत से लटकी एक छिपकली अपनी लाल आंखों से नफर को घूरती रहती और छत के नीचे नफर खर्राटे भरता सोता रहता।

यह सब पुरानी बातें हैं। वर्तमान सेन वंश के बांधकर रखे, काल पृष्ठों को यदि आज भी खोलकर देखा जाय तो ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे। अठारहवीं शताब्दी के पहले से शुरू कर इस बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक की बहुत-सी निन्दा, लांछन, बदनामी आदि अदृश्य फलक पर लिखे मिलेंगे। पर यह सब अब कोई भी नहीं जान पाएगा। अब यह सब जानना न तो किसीके लिए उचित ही है और न ही आवश्यक।

सींवाल जने इस मकान को सामने खड़े हो देखने भर से कुछ समझ

में नहीं आता। यह सारी बातें तो तब की हैं जब इस मोहल्ले में और कोई मकान नहीं था, सिर्फ यही अकेला मकान अपनी शान में अकड़ा रहता था। अब तो इस मोहल्ले में सामने एवं पीछे की तरफ बहुत-से मकान बन चुके हैं; पर पहले इस मकान के अगल-बगल खाली मैदान-सा था। उन दिनों इस मकान की अभिजात्यता मौजूद थी। लोग इस घर के बाशिन्दों का आदर किया करते थे, उनसे भय खाते थे, साथ ही मन में भक्ति भी थी इन लोगों के प्रति।

अब तो आस-पास के मकानों में सुबह-शाम रेडियो की आवाजें सुनाई पड़ती रहती हैं। कारें आती-जाती रहती हैं। कितने ही किराये-दार भी आ गए हैं। अब तो अगर पतंग उड़ते-उड़ते इस मकान में आ गिरती तो लड़के लोग बिल्कुल निर्भीक हो इस मकान में घुस जाते हैं। दरबान भी अब बच्चों को कुछ कहता-सुनता नहीं है। यह तो सब जानते हैं कि यह मकान किसी बड़े आदमी का है पर यह किसीको भी पता नहीं कि इसके भीतर कितने लोग रहते हैं, वे लोग क्या काम करते हैं, उनकी जिन्दगी किस तरह गुजर रही है, उसका आधार क्या है ? वे लोग किस उम्मीद के सहारे जीवित हैं ?

लेकिन आज मोहल्ले के सभी लोग उमड़ पड़े इसी मकान के सामने।

इतने दिनों तक विशेषतः किसीका इस ओर ध्यान नहीं जाता था। विराट हवेली थी। सामने की तरफ के खिड़की-दरवाजे अक्सर बन्द ही रहते थे। मकान के सामने गाड़ी खड़ी करने वाले बरामदे पर खड़ा नीम का पेड़ अपनी घेर-घुमेर छाया लिए एक जमाने से आंधी-पानी, तूफान आदि निर्विरोध सहता रहा है। दीवारों पर जमी सींवाल पर कितने ही लता-पत्ते उग-उगकर जंगल-सा बन गया है। लोग-बाग समझते थे कि इस घर में रहनेवाले लोग असभ्य हैं। क्योंकि उन लोगों को कोई कभी भी देख नहीं पाता। यहां तक कि इस घर में रहनेवालों के देखने की कोशिश अगर सूर्य या चन्द्रमा भी करे तो उन्हें भी हार माननी पड़ेगी।

पर आज अब कुछ भी अनजाना नहीं रह पायेगा। ऐसा लग रहा था मानो आज सारे रहस्य खुल जायेंगे। सामने वाली चाय की दुकान वाला लड़का भी दौड़ा आया है, धोबी पाड़े से भी दो-एक जने भागकर घटनास्थल पर आ पहुंचे। मकान के सामने से एक खाली रिक्शा गुज़र रहा था। उस रिक्शे का चालक भी भीड़ देखकर वहीं ठिठक गया।

वह लोगों से पूछने लगा, "क्या हुआ, बाबू?"

मकान के भीतर रहनेवालों की दिनचर्या भी मानो एकदम उलट-पलट हो गयी। बड़े बाबू का कमरा खाली पड़ा है। खास सेवक पांचू भी घोड़ागाड़ी की छत पर बैठ बड़े बाबू के साथ ही चला गया है। उस ओर से कोई समाचार नहीं है। रोज़ की तरह कितनी ही रात रहते फूलमणी ने जल्दी उठकर मर्दानखाने के बर्तन मांजे हैं। पयमन्त ने सीढ़ी के दरवाज़े को खोला है। सिन्धुमणी बरामदे में पड़ी सो रही थी। नल के नीचे हो रही बर्तनों की खटर-पटर से उसकी नींद टूट गई और वह हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और जल्दी-जल्दी मालकिन के कमरे की तरफ भागी। उसने देखा कि मालकिन अभी तक जागी नहीं थीं। और उन दिनों तो सिन्धुमणी ही जनानखाने में सबसे पहले जागा करती थी। हां, कुंजबाला बहुत देर से उठा करती थी। वह नींद की बहुत ही पक्की थी। सिन्धु ने यह बात मालकिन से सुनी थी।

कुंजबाला जब मालकिन के साथ काशी गई थी तब वह वहां रात-दिन सोती ही रहती थी।

एक दिन अनजाने में बड़े बाबू की ठोकर लग गई थी। तब से हमेशा वह मां जी के कमरे में फर्श पर ही सोया करती। जब मां जी बीमार हो गई थीं तो उसे रात-दिन मालकिन की सेवा करनी पड़ती थी। फिर तो उसे अक्सर न दिन में सोने को मिलता न रात को। एक दिन कुंजबाला ने कहा बताते हैं, "कलकत्ता जाकर मन भरकर सोऊंगी।"

और शायद कुंजबाला की सोने की उसी आदत के चलते ही ऐसा सर्वनाशी काण्ड घटित हो सका था।

सिन्धुवाला ने पूछा था, "कौन-सा सर्वनाशी काण्ड, दीदी ?"

"तुझे कोई मतलब नहीं यह सब सुनने का।"

"क्यों ? सुनने से क्या होगा, दीदी ?"

उस समय बहुत रात थी। दोपहर के वक्त मालिक ने काफी मात्रा में भांग चढ़ा ली थी। उसी के नशे से वे पूरे दोपहर एवं अपराह्ण तक ऊंघते रहे थे। अपराह्ण तक मालकिन कुछ ठीक-ठीक ही थीं लेकिन आधी रात को मांजी अचानक ही कैसे ही तो करने लगी थीं। उनके चेहरे एवं आंखों के भावों से उनकी हालत चिन्ताजनक लगी। कुंजबाला ने जल्दी से खास सेवक को पुकारा, "सुन रहे हो, ऐ !"

वहुत आवाज देते-देते मालिक महाशय का खास सेवक किसी प्रकार उठा।

कुंजबाला ने कहा, "जल्दी से बड़े मालिक साहब को उठा, मांजी कैसे-कैसे कर रही हैं।"

"पर मालिक तो सो रहे हैं। कैसे उठाऊं उन्हें ?"

उसकी वात सुन कुंजवाला को वहुत जोर से गुस्सा आया। वह चिढ़कर वोली, "तू जगा तो सही मुंहजले। वोल, मांजी की तवियत ज्यादा खराव है।"

इधर तो मांजी की हालत एकदम खराव होती जा रही थी, पुत-लियां मानो उलट ही जायेंगी, और उधर वगल के कमरे में मालिक का कहीं पता नहीं था। कमरे में विस्तर वाकायदा विछा हुआ था। पर विस्तर पर मनुष्य मात्र का नामो-निशान नहीं था। खास सेवक मालिक को इधर-उधर ढूंढ़ने लगा। उसने सोचा, नशे की धुन में मालिक कहीं चले तो नहीं गये ! गंगा की ओर का दरवाज़ा तो वन्द कर दिया था और वह ज्यों-का-त्यों वन्द ही था। वरामदे में भी इस कोने से उस कोने तक छान मारा। पर वे कहीं नहीं थे। आखिर वड़े वावू गये कहां ?

उन दिनों की वातें वे ही लोग जानते थे जो वहां मौजूद थे।

डॉक्टर चौधरी ने कहा था, "जो कुछ करना हो शीघ्र कीजिये।

सिन्धुवाला ने पूछा था, "कौन-सा सर्वनाशी काण्ड, दीदी ?"

"तुझे कोई मतलव नहीं यह सव सुनने का।"

"क्यों ? सुनने से क्या होगा, दीदी ?"

उस समय वहुत रात थी। दोपहर के वक्त मालिक ने काफी मात्रा में भांग चढ़ा ली थी। उसी के नशे से वे पूरे दोपहर एवं अपराह्न तक ऊंघते रहे थे। अपराह्न तक मालकिन कुछ ठीक-ठीक ही थीं लेकिन आधी रात को मांजी अचानक ही कैसे ही तो करने लगी थीं। उनके चेहरे एवं आंखों के भावों से उनकी हालत चिन्ताजनक लगी। कुंजबाला ने जल्दी से खास सेवक को पुकारा, "सुन रहे हो, ऐ !"

वहुत आवाज देते-देते मालिक महाशय का खास सेवक किसी प्रकार उठा।

कुंजवाला ने कहा, "जल्दी से वड़े मालिक साहव को उठा, मांजी कैसे-कैसे कर रही हैं।"

"पर मालिक तो सो रहे हैं। कैसे उठाऊं उन्हें ?"

उसकी वात सुन कुंजवाला को वहुत जोर से गुस्सा आया। वह चिढ़कर वोली, "तू जगा तो सही मुंहजले। वोल, मांजी की तबियत ज्यादा खराव है।"

इधर तो मांजी की हालत एकदम खराव होती जा रही थी, पुतलियां मानो उलट ही जायेंगी, और उधर वगल के कमरे में मालिक का कहीं पता नहीं था। कमरे में विस्तर वाकायदा विछा हुआ था। पर विस्तर पर मनुष्य मात्र का नामो-निशान नहीं था। खास सेवक मालिक को इधर-उधर ढूंढ़ने लगा। उसने सोचा, नशे की धुन में मालिक कहीं चले तो नहीं गये ! गंगा की ओर का दरवाजा तो वन्द कर दिया था और वह ज्यों-का-त्यों वन्द ही था। वरामदे में भी इस कोने से उस कोने तक छान मारा। पर वे कहीं नहीं थे। आखिर वड़े वावू गये कहां?

उन दिनों की वातें वे ही लोग जानते थे जो वहां मौजूद थे।

डॉक्टर चौधरी ने कहा था, "जो कुछ करना हो शीघ्र कीजिये।

देर करना अच्छा नहीं है।"

डॉक्टर चौधरी ने मंगला को भली-भांति देखा।

उस वक्त बेचारी मंगला डरी हुई बकरी की तरह थर-थर कांप रही थी। शरीर से पानी की तरह पसीना बह रहा था उसके। बगल में खाट पर मालकिन का शरीर निर्जीव-सा पड़ा था। डॉक्टर चौधरी ने जरा-सा खून लेकर परीक्षण किया। उन्होंने परीक्षण में क्या देखा क्या नहीं, यह तो वही जानें।

गुरुदेव ने मालिक को ओट में बुलाया।

फिर बोले, "एक वंश के खून में दूसरे के खून का संमिश्रण होने में शास्त्रीय बाधा-विरोध अड़चन आती है। पहले उसे दूर करना पड़ेगा।"

मालिक ने पूछा, "बताइये, उसे किस प्रकार दूर किया जाय?"

गुरुदेव ने कहा, "उपाय तो हैं अगर आपको आपत्ति न हो तो।"

"क्या उपाय है? मुझे तो किसी तरह की भी आपत्ति नहीं होगी।"

उस रात क्या हुआ! भाग्य के उस अमोघ निर्देश में भाग्य देवता का शायद गंभीर उद्देश्य निहित था। उस दिन मालिक महाशय खुद कल्पना भी नहीं कर पाये थे शायद कि उनके उस रात के कृत्य का फल किसी दिन इतना कष्टदायक होगा।

मालकिन की वह रात किस प्रकार कटी यह भगवान ही जानता है।

गुरुपुत्र अधिक देर नहीं रुके।

उनकी ट्रेन शाम को पहुंचने की बात थी पर लेट होने के कारण पहुंची रात दस बजे। और सुबह ही वह वापस जाने वाले थे। वे मांजी से बोले थे, "मैं अधिक देर यहां नहीं रुक सकता। मुझे हर हालत में सुबह जाना ही पड़ेगा। आगामी सोमवार अर्धोदय योग पड़ता है। उस वक्त मेरा काशी में मौजूद होना अत्यंत आवश्यक है। पिताजी का

क्रियाकर्म आदि सब बाकी पड़े हैं।"

मां जी अपने गुरुपुत्र के कदमों में लोट गईं।

बोलीं, "उसके बाद क्या हुआ ?"

उसके बाद उसी रात मालिक नयी धोती, नया कुर्ता पहन कर तैयार हो गये। मंगला ने भी बनारसी साड़ी पहन कर घूंघट निकाल लिया। उस घर से दूर एक और घर में सारे अनुष्ठान का आयोजन पूरा किया गया। वहां मंगला को भी ले जाया गया। उस वक्त रात बहुत बीत चुकी थी।

पुरोहित ने मंत्रोच्चारण किया—

"ओम् यदेत्त हृदयं तव तदस्त हृदयं मम्
यदिदं हृदयं मम तदस्तं हृदयं तव।"

बड़े मालिक ने मंत्रोच्चार इस प्रकार किया—

"प्राणैस्ते प्राणान संदधामि अस्थिभिर
स्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा त्वचूम।"

यानी प्राण-प्राणों से, अस्थि-अस्थि से, मांस-मांस से और चर्म-चर्म से एकाकार हो जाय।

गोत्रांतर पहले ही हो चुका था। उसके बाद हुआ विवाह। विधवा-विवाह। काशीधाम देवताओं का धाम है। शास्त्रीय विधान मानकर और मां जी को पुनर्जीवन प्रदान करने हेतु यह विवाह किया गया। यह वैध है। इसमें कोई बुराई नहीं। इस कर्म में देवताओं की वर्जना भी नहीं है बल्कि सम्मति ही है। तिस पर गुरुदेव का समर्थन भी है।

मालिक ने कहा, "पर यह बात किसी को भी मालूम नहीं होना चाहिये।"

सिर्फ एक रात की बात थी अतः दुनियावालों के अनजाने में सारे समाधान हो गये। कोई भी नहीं जान पाया। सभी अनुष्ठान पूरे कर मंगला यथारीति वापस चली आयी। बनारसी साड़ी भी उतार दी थी उसने। मंगल-सूत्र एवं सिंदूर भी उतार, धो-पोंछ डाले।

डॉक्टर चौधरी ने उसके शरीर में सुई घुसा दी। डर के मारे घूंघट की ओट में ही शायद एक वार मंगला कांप उठी थी। और फिर उसी क्षण वह वहीं वेहोश हो गई थी।

"उसके वाद ?"

सिर्फ एक या दो वार की वात नहीं है, न जाने कितनी वार खून लिया गया। फिर भी मां जी ठीक नहीं हुईं। पर जव वहुत रात हो जाती थी तव मालिक पता नहीं कहां गायव हो जाते थे। गहरी रात हो जाती तव मालिक के लिए पालकी आया करती थी। भोर होने को होती तव वे वापस लौट आते। तव फिर डॉक्टर आता और मालिक मालकिन की तवियत के वारे में दरियाफ्त करते। दोपहर के वक्त मालिक को वहुत गहरी नींद आती। करीब अपराह्न चार वजे वे उठते। उस वक्त खास सेवक उनके लिये भांग का शरवत और तम्बाकू आदि तैयार रखता था।

पर मंगला को दिन में काम करते वक्त वहुत ऊंघ आती थी।

कुंजवाला पूछती, "तुझे क्या होता जा रहा है री ? वैठी-वैठी ही ऊंघ रही है।"

एक दिन मंगला ने उसके पांव पकड़ लिये कस कर। वोली, "अव जीवित नहीं रह सकती दीदी, मेरा सर्वनाश हो गया।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

दूसरे दिन ही पता नहीं मालिक मंगला को कहां ले गये। कहा कि, दुर्गा-मंदिर में प्रसाद वनाने का काम है अतः मंगला कुछ दिन वहीं रहेगी। घर का खाना वनाने के लिये किसी और का इंतजाम हुआ। काशी का हिन्दुस्तानी ब्राह्मण था वह। रसोई अच्छी वनाता था वह, पर मिर्च-मसाले अधिक डालता था।

पर उपाय ही क्या था। उससे ही किसी प्रकार कार्य चलने लगा। कुंजवाला इतना ही जानती थी कि मंगला दुर्गा-मंदिर का प्रसाद वनाने के लिये ही ले जायी गयी है। और लोगों को भी इतना ही पता लगा।

मालकिन की तबियत उस समय तक भी ठीक नहीं हुई थी। पर धीरे-धीरे उनकी दशा में सुधार आने लगा। तब तक डेढ़ साल का समय गुजर चुका था।

एक दिन उन्होंने कुंजबाला से पूछा, "कुंज ?"

कुंजबाला जल्दी से मांजी के मुंह के पास झुककर बोली, "कहिये, मालकिन ?"

"तेरे मालिक साहब कहां हैं ?"

कुंजबाला ने कहा, "बुलाऊं क्या ? मालिक तम्बाकू पी रहे हैं।"

"ज़रा पानी तो पिला।"

कुंजबाला ने कहा, "अब कैसी हैं आप, मांजी ?"

मांजी ने सिर हिलाकर कहा, "तबियत ठीक नहीं लग रही है।"

एक दिन मालकिन ने कहा, "अब तो दवा पीने में अच्छी नहीं लगती।"

दवा पी-पीकर उनको दवाओं से नफरत-सी होने लगी थी। चेहरा बहुत ही कमज़ोर दिखाई देता था। पहले तो वह किसी को पहचान ही नहीं पाती थीं। मालिक पास आते तो पता नहीं क्या-क्या प्रलाप करने लगतीं। सिर ढंकने तक का होश नहीं रहता था। जो मांजी मालिक का चरणामृत लिये बिना किसी दिन जल ग्रहण तक नहीं करतीं थीं उन्हीं मांजी की कैसी मति मारी गयी थी। दवा मुंह के करीब ले जाते ही जोर से दांत भींच लेतीं। अगर शरीर की ताकत लगाने में समर्थ हो पातीं तो धक्का देकर दवा गिरा देतीं। उस समय घर लोगों से भर गया था। कलकत्ता से और नौकर-चाकरों को बुलवा लिया गया था। कलकत्ते से ट्रेन द्वारा बर्फ, डाब आदि मंगवाये जा रहे थे।

काशी में सभी दवाएं उपलब्ध नहीं हो पाती थीं। जो दवाएं वहां नहीं मिलती थीं वे कलकत्ता से मंगवाई जाती थीं। डॉक्टर चौधरी आते और उनके साथ आया करते थे डॉक्टर सान्याल। मालिक का हुक्म था कि एक बार रोज़ आकर देख जाया करें।

और आखिर एक दिन डॉक्टर ने मांजी को अन्न खाने की अनुमति दे दी।

बोले, "बहुत ही पतला सिंगी मछली का झोल यानी रसा, और महीन तथा पतले सिझाये चावलों का भात खा सकती हैं।"

पहले दिन मालकिन ने चावलों का कौर मुंह में लिया पर ज़रा भी रुचि नहीं हुई।

बोलीं, "मंगला ने यह क्या खाना बनाया है?"

कुंजबाला ने कहा, "मंगला ने नहीं बनाया मालकिन, एक हिन्दुस्तानी ब्राह्मण ने बनाया है।"

"क्यों? मंगला कहां गई?"

कुंजबाला ने कहा, "मंगला यहां नहीं है, मांजी।"

"पर वह गई कहां?"

"आजकल वह दुर्गा-मन्दिर में प्रसाद बनाने के काम पर है।"

"क्यों? वह वहां क्यों गई है?"

"मालिक का हुक्म था।"

मालकिन ने कहा, "कहां हैं तेरे मालिक? उन्हें बुला तो?"

मालिक के आते ही मालकिन ने सिर पर ओढ़ने का प्रयत्न किया, और बोलीं, "आपने मंगला को दुर्गा-मंदिर का प्रसाद बनाने को भेजा है?"

मालिक ने कहा, "क्यों तुमसे किसने कहा? यहां का खाना अच्छा नहीं बना क्या?"

"आज मैं तो नहीं खा सकी।"

मालिक ने पता नहीं क्या सोचा पल भर।

मांजी ने कहा, "तुम उसे यहां ले आओ। मैंने खुद बता-बताकर इतने दिनों से उसे खाना-पकाना सिखाया है। यहां का खाना वही बनाया करेगी।"

मालिक ने उस बात को टालना चाहा। अतः बोले, "आज तुम्हारी

तबियत कैसी है ?"

मालकिन बोलीं, "मेरी बात छोड़ो, आप अपनी कहिये, आप कैसे हैं ?"

मालिक ने कहा, "तुम्हारी तबियत जब खराब थी तो मैं भला कैसे खुश और चंगा रह सकता था।"

मालकिन ने कहा, "मैं ही आपको काशी लाई थी। मेरे ही कारण आपको इतना कष्ट हुआ है।"

मालिक ने कहा, "पर कष्ट भी सार्थक हो गया, बस इतनी ही सांत्वना है।"

मांजी की आंखें छलछला आईं। वे बोलीं, "एक दिन या एक महीना ही हो तो भी कोई बात है, पूरे एक साल से बिस्तर पर पड़ी हूं। अब तो जरा भी सहन नहीं कर सकती ऐसी दशा। अब एक पल भी बिस्तर पर पड़ी नहीं रह सकती।"

"जब इतने दिनों तक सहा है तो कुछ दिन और सहो।"

मांजी ने कहा, "मैं मर जाती तो ही अच्छा रहता।"

"ऐसी अशुभ बात क्यों कह रही हो ?"

"और क्या चाहिए मुझे ! आपके चरणों में मर सकूं, मांग में सिंदूर भर चिता पर जाऊं, क्या ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा मुझे ?"

बड़े मालिक की सभी बातें पूरे घर के लोगों को अच्छी तरह याद हैं। वे बागवाली हवेली जाते अवश्य थे, साथ जगत्तारण बाबू एवं दुलालबिहारी बाबू भी जाते, वहां चहल-पहल होती, महफिल जमती, फिर बड़े मालिक हृदय से पूर्णतः ईमानदार गृहस्थ थे। बाग की हवेली में जाकर भी वे एक पल के लिए भी घर को नहीं भूल पाते थे। गृहस्थी भी चलाई, धार्मिक अनुष्ठान भी पूर्णतः मन से पूरा कराते थे, साथ ही शराब भी पीते थे, बाग वाली हवेली में रखैल के पास भी जाते थे। पर इन सब बातों से मांजी को न तो विरोध ही था और न किसी प्रकार का भय या संदेह।

के लिये उसका पति ही उसका देवता है।"

"पर मैं देवता नहीं बनना चाहता।"

"ऐसी बात मत कहिये। मेरे लिये तो आप देवता ही हैं।"

मालिक ने कहा, "लेकिन मुझमें कितनी बुराइयां हैं, बीच-बीच में मैं रात बाहर गुजार देता हूं, शराब पीता हूं, यह भी तो जानती हो तुम।"

मां जी ने कहा, "तुम्हारा जो जी चाहे करो, मेरे लिये यही क्या कम है कि तुम मेरे हो।"

उस दिन मांजी ने यह बात बड़े गर्व के साथ कही थी। उन्होंने यह सब कहते वक्त सोचा था, दुनिया में और कहीं भी कुछ दरार हो सकती है, धोखा हो सकता है, पर उनके दांपत्य संबंधों में किसी प्रकार की ग्रंथि नहीं आ सकती।

इसीलिये जब मालिक ने कहा कि मंगला दुर्गा-मंदिर में प्रसाद पकाने गई है तो उन्होंने इस बात पर सचमुच ही विश्वास कर लिया था।

लेकिन बेचारी मंगला उस वक्त किसी और ही कष्ट के आघात से ...हो रही थी। किसी निर्जन कमरे में शय्या-ग्रस्त हो रही थी। यह कोई भी नहीं जान पाया।

मालिक ने उससे साफ-साफ कह दिया था, "जिस प्रकार यह शादी ...फ सामयिक थी उसी प्रकार यह सन्तान भी सामयिक प्रयोजन भर ही होगी।"

मालिक ने ही रुपये दिये थे। सेवा-सुश्रूषा करने के लिए नौकर-नौकरानी आदि रखे थे। मकान था, जिसमें उसे रखा था, किराया दिया था। इसीलिए सब कुछ भूल जाना पड़ेगा। शरीर की थकावट, पेट की सन्तान, मांग का सिंदूर सब कुछ धो-पोंछ डालना पड़ेगा। मालिक रुपये भी देना चाह रहे थे कि वह जहां चाहे जा सकती है। सन्तान को भी अपने पास रख सकती है। किसीके सामने कुछ कह अवश्य नहीं सकेगी

अगर ऐसा किया तो दंडित होगी, यह बात सिर्फ स्पष्ट नहीं कही गई।

पर उस दिन मालिक के उस प्रस्ताव पर मंगला ने हां या ना कुछ भी नहीं कहा था। सिर्फ सिर झुकाये खड़ी रही थी।

मंगला जिस दिन लौटकर वापस आयी उस दिन उसका चेहरा देखकर कुंजबाला दंग रह गयी थी।

बोली, "हाय राम, क्या हालत हो गई री तेरी ! भगवान का प्रसाद बनाते-बनाते तूने अपनी क्या दुर्गत बना ली है री ?"

मंगला मालकिन के कमरे में जा उनके चरणस्पर्श भी कर आयी थी।

मालकिन ने कहा उससे, "मेरे घर का खाना कौन बनाता है, कैसा बनाता है, इसकी भी तुझे चिन्ता है ? क्यों गई थी दुर्गा मंदिर ?"

धीरे-धीरे मालकिन बिल्कुल तन्दुरुस्त हो गयीं। पथ्य लेने लगीं। बिस्तर छोड़ चलने-फिरने लगीं और आखिर एक दिन काशीधाम से कूच कर दिया गया।

जीवन के आखिरी दिनों में मालिक बहुत ही कातर से रहते। पता नहीं वे क्या कहना चाहते थे जो उनकी जबान तक आकर ही अटक जाता। काशी जाने के बाद से वे जैसे बदले-बदले-से, उखड़े-उखड़े-से रहने लगे थे। बागहवेली जाने की लालसा भी मानो खत्म हो चुकी थी। यार-दोस्त आते, जगत्तारण बाबू आते, ऊपर खबर भिजवाये बहुत देर बीत जाती, तब कहीं वे नीचे उतरकर आते।

गाड़ी में बैठते वक्त अनायास ही कभी उनकी नज़र गन्दे चिथड़े पहने नफर पर पड़ती जो उन्हें देखते ही उनके नज़दीक आने का प्रयत्न कर रहा होता। वह पास पहुंचकर कहता, "बड़े मालिक, एक पैसा दो न।"

जगत्तारण बाबू उसे भगा देते डांटकर। कहते, "जा-जा, भाग यहां से। पैसा दो ! हुंह, अभी से पैसे का क्या करेगा रे तू ?"

"लैमनचूस खाऊंगा।"

मालिक का चेहरा उसे सामने देख और लोगों का उसके प्रति ऐस व्यवहार देख दुःख एवं बेबसीवश काला पड़ जाता।

वे आवाज देते, "पयमन्त !"

पयमन्त दौड़ता हुआ आता तो उससे कहते, "पूछो तो, इसे भर पेट खाना क्यों नहीं मिलता ? क्या इसको रोटी देने की किसीको भी चिन्ता नहीं ?"

"जी, खाता तो है यह।"

"तो फिर लैमनचूस के पैसे क्यों मांगता रहता है ? जा बोल, इसे फिर से खाना दे। रसोईघर में जाकर बोल आ कि इसे अच्छी तरह पेट भर खाना खिलाया जाय। और सुन, एक बार खजांची बाबू को भी बुला।"

इस बीच मालिक के सफेद झक कुरते को अपने गंदे हाथ लगा-लगाकर नफर काला कर चुका था।

खजांची बाबू खाता-बह छोड़ दौड़ते-से आए।

मालिक ने कुछ नाराज़ होते हुए खजांची बाबू से कहा, "यह फटे-पराने कपड़े क्यों पहने रहता है हर वक्त ? तुम्हें दिखाई नहीं देता ?"

कालीदास बाबू अपनी सफाई पेश करते हुए कहते, "अजी, बहुत ।वगड़ैल लड़का है। नये कपड़े पहनाने भर की देर है···"

"बकवास बन्द करो।"

मालिक ने डपटते हुए कहा।

बोले, "जब भी और जितने कपड़े मुन्ना के लिए बनें तब इसके लिए भी बनवाए जायं। अब कभी यह मेरे सामने गन्दे या फटे कपड़ों में या नंगा न आए, इसका ध्यान रखियेगा।"

मालिक के जाने के बाद सब मिलकर काना-फूसी करते, "यह लड़का कौन है ?"

मोहरी बाबू कहते, "इस छोकरे ने तो मालिक को बहुत ही वश में कर रखा है।"

दोपहर को खा-पीकर मालिक नृत्य-घर में लेटे-लेटे तम्बाकू के कश लगा रहे थे। खास सेवक भी शायद तुरन्त खाना खाने के लिए रसोई-घर में गया ही था। अचानक धूल से सने पांव लिए-दिए नफर मालिक की गर्दन पर सवार हो गया।

"अरे, छोड़, उतर, नीचे उतर।"

पर उस वक्त तो नफर का रूप ही दूसरा था। हुक्के की नली भी उसने उनके मुंह से निकाल ली थी। मालिक ने जब नली वापस लेनी चाही तो कहने लगा, "नहीं दूंगा।"

मालिक बहुत ही उलझन में पड़ गए तो आवाज़ लगाई, "अरे भई, कोई है? ज़रा इसे पकड़ो तो!"

"अगर उतारना है तो पहले एक पैसा दो।"

"पैसे का क्या करेगा तू?"

"भूख लगी है।"

"तुझे कोई खाना नहीं देता?"

पर नफर ने मालिक की पीठ पर लदे-लदे शैतानी शुरू कर दी। कभी सिर के बाल खींच लेता था तो कभी मुक्का बांधकर मारने लगता। मालिक के पास इतनी मनमानी करने की हिम्मत किसीकी भी नहीं होती थी। यहां तक कि मुन्ना की हिम्मत भी नहीं होती थी उनके इतने करीब जाने की। मालिक मुन्ना की पढ़ाई-लिखाई एवं स्वास्थ्य आदि की सभी खबरों की पूरी जानकारी रखते थे, फिर भी इस तरह मालिक की पीठ पर चढ़ जाने का साहस नहीं होता था मुन्ना को।

मालिक उससे धीरे से पूछते हैं, "अरे, तूने भात खाया या नहीं?"

उस वक्त नफर मालिक के सीने से चिपका उनकी छाती पर उगे बाल नोच रहा था।

धीरे से बोला, "खाया है।"

"पेट भर गया?"

"नहीं।"

मालिक उसके भोलेपन पर हँस पड़े। वे समझ गए कि यह झूठ बोल रहा है। क्योंकि झूठ बोलने से ही लाड़-प्यार मिल सकता है।

जगत्तारण बाबू से मालिक पूछते, "मुन्ना की पढ़ाई-लिखाई कैसी चल रही है, जगत्तारण बाबू ?"

"अजी, मुन्ना बाबू का ब्रेन ब्राइट है। जो कुछ बताता हूं झटपट याद कर लेता है।"

"और वह ?"

"कौन ?"

जगत्तारण बाबू समझकर भी अनजान बनते-से बोले, "किसकी बात कर रहे हैं आप ?"

"और कौन ? वही, मेरा नफर ?"

जगत्तारण बाबू नफर का नाम सुन मुंह बिचकाते हैं।

बोले, "अजी, वह छोकरा कुछ भी नहीं बन पायेगा। ज़रा भी दिमाग नहीं है। उसका झुकाव बस खेल-कूद की ओर ही है। पढ़ाई-लिखाई सिखाकर भी कुछ फायदा नहीं है। वह वज्र मूर्ख ही रहेगा।"

"वज्र मूर्ख !"

बड़े मालिक के दिल को मानों आघात पहुंचा यह सुनकर। बहुत ही मरी आवाज में पूछा, "तो क्या वह जरा भी नहीं पढ़ता ?"

जगत्तारण बाबू बोले, "पढ़ेगा क्या खाक। उसके दिमाग में कुछ घुसता ही नहीं। दिमाग में गोबर भरा पड़ा है।"

मालिक ने कहा, "आप जरा अच्छी तरह कोशिश कर देखिये न उसे पढ़ाने की। हो सकता है, वह पढ़ने लगे। सभी का दिमाग एक बराबर थोड़े ही रहता है।"

जगत्तारण बाबू ने कहा, "आपका कोशिश करवाना बेकार हो जायेगा, फिर भी जब आप कह रहे हैं तो कोशिश करूंगा।"

मुन्ना एवं नफर दोनों को ही स्कूल में भर्ती करवा दिया गया। मुन्ना गाड़ी में बैठकर स्कूल जाता। उसके लिये गुलमोहर अली गाड़ी

तैयार लिये हाज़िर खड़ा रहता। मांजी खुद अपनी देख-रेख में मुन्ना को खिला-पिलाकर और अच्छी तरह तैयार कर स्कूल भेजतीं। नौकर-चाकर सभी वड़ी चुस्ती से काम करते थे उस वक्त। अगर ज़रा भी देर हो जाती किसी को तो उस पर मालकिन से पड़ने वाली डांट का कोई अंत ही नहीं रहता था।

कहतीं, "जानते हो इस वक्त मुन्ना स्कूल जाता है, फिर तुम सव कहां रहते हो?"

मुन्ना वावू स्कूल क्या जा रहे हैं मानो पूरे घर के नौकर-नौकरानियों के सिर खरीद लिये हैं।

नफर ने देख लिया कि मुन्ना गाड़ी में बैठ रहा है स्कूल जाने के लिये। वह भी दौड़ा-दौड़ा आया और गाड़ी में वैठना चाहा। वह एक ही झटके में पायदान पर चढ़ चुका था।

वोला, "मैं भी गाड़ी में बैठकर स्कूल जाऊंगा।"

"अरे, रुक जा, वहीं रुक जा।"

एक ही पल की और देर हुई होती तो गुलमोहर अली गाड़ी हांक चुका होता। उसने एक दम से रास खींच ली घोड़े की। अव्दुल भी पीछे से कूद पड़ा।

वह नफर को डांटने लगा, "उतरो, उतरो नीचे।"

नफर वोला, "नहीं, नहीं उतरूंगा। मैं भी गाड़ी में वैठूंगा।"

गुलमोहर अली भी उसे डराने की कोशिश करने लगा। वोले, "वावू को वुलाओ। जल्दी वुलाओ।"

नफर को जवरन खींचकर वहीं उतार घोड़ागाड़ी घरघराती हुई चली गई। नफर गुस्से के मारे स्कूल ही नहीं गया। वस, दिन भर वहीं जमीन में लोटपोट हो रोता रहा। और रोते-रोते ही पता नहीं कव वहीं सो गया।

यह सव वातें वहुत वचपन की हैं। उसके वाद मालिक की मृत्यु हो गयी। मरने से कई महीने पहले से ही वे विस्तर से उठने लायक भी

नहीं रहे थे। नफर ने कई बार ऊपर जाना चाहा पर पयमन्त उस पर चिल्ला पड़ता था, "जा-जा, भाग यहां से।"

मालिक की उन दिनों तबियत अधिक खराब थी। कमरे में उनके पास कोई नहीं था। बाहर पयमन्त नफर को डांट रहा था। मालिक ने पयमन्त को पुकारा और पूछा, "नीचे कौन रो रहा है?"

"कहां, कोई नहीं रो रहा हुजूर!"

"कैसे नहीं रो रहा, मैं साफ सुन रहा हूं। जा, देखकर आ।"

पँमंत बाहर गया। बाहर आकर उसने नीचे की तरफ झांककर देखा। एकबार बरामदे तक जा आया। तीन मंजिले इस मकान के ओने-कोने में पता नहीं कितने लोगों ने अपना नीड़ बसाया था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी कितने ही लोगों ने अन्न प्राप्ति की कोशिश में इस मकान में आश्रय लिया था। कोई ठगकर गया तो कोई ठगाकर, कोई मारा गया तो कोई मारकर गया। फिर भी इस मकान की ईंट, काठ, पेड़-पौधे, सींवाल, झाड़-झंखाड़ की ही तरह अनेक लोग इस मकान के रंध्र-रंध्र में बसे हुए हैं। उन सभी का कोलाहल, सभी की चीत्कारें, सभी का रोना और हंसना आदि अगर टेप करके रखे जाते तो उस इतिहास को सुनकर आज के युग के लोग चौंक उठते, सिहर उठते। पर न जाने वे सब कहां डूब गये, गुम हो गये। वे अब कभी दिखाई नहीं देंगे। शायद कभी उनकी आवाज़ भी सुनाई नहीं देगी।

पयमन्त वापस आकर बोला, "कोई नहीं रो रहा है, हुजूर।"

"जरा रसोई की ओर कान लगाकर सुन तो?"

रसोई की तरफ भी कान लगाकर सुन कर आया है। पर कहीं कोई आवाज़ नहीं थी। सिर्फ शिशु की मां वहां बैठ कर सब्जी काटा करती या मसाले पीसती या फिर कभी-कभार मंगला के साथ कुछ बातें करती। पर मंगला उसकी बातों का कोई जवाब नहीं देती।

शिशु की मां कहती, "तुम्हारी किस्मत तो फिर भी अच्छी थी जो बाबा विश्वनाथ के चरण दर्शन कर आयी। पर हमारा क्या होगा?"

पर मंगला चुपचाप चार चूल्हों पर खाना बनाने में व्यस्त रहती। दाल भात, रसेदार सब्जी आदि सभी चीजें एकसाथ खदबद-खदबद कर सीझती रहतीं। अगर बटलोयी में मांस पकता हो तो गुड़ुम-गुड़ुम सी आवाज आती रहती है। और बीच-बीच में बाहर आंगन से शिशु की मां की सिल-बट्टा घिसने की आवाज़ आती रहती।

"दीदी, देखो, वह छोकरा खाना खाने आया है। आज फिर उस दिन की ही तरह जी जलायेगा।"

नफर खाना खाने बैठने से पहले ही चीखता है, "आज अगर मुझे मछली नहीं दी तो मालिक से शिकायत करूंगा जाकर।"

"नहीं मिलेगी तुझे मछली, देखती हूं तू क्या करता है।" शिशु की मां कमर में आंचल लपेटे मारने की मुद्रा में आ जाती है।

नफर कहता है, "मारोगी क्या मुझे ?"

"हां मारूंगी। तेरे मुंह में आग लगे। सुनी दीदी तुमने इसकी बातें ? औरतों पर हाथ उठाने का दुस्साहस करता है।"

नफर चिल्लाया, "बको मत, मैंने तुम पर हाथ उठाने की ज़रा भी कोशिश नहीं की।" और फिर वह चिल्लाता है, "महाराजिन दीदी !"

मंगला का दिल धक-धक करने लगता है।

नफर गुस्से में रसोई घर के दरवाज़े तक आ जाता है और ज़ोर से कहता है, "क्यों, कान में आवाज़ नहीं पहुंची क्या ?"

उसके बाद ज्योंही उसने मंगला के चेहरे की ओर देखा कि आगे के शब्द उसके होठों तक आकर ही अटक गये। बोला, "तुम्हारी आंख में क्या हुआ महाराजिन दीदी ? पानी क्यों बह रहा है आंख से ?"

इस बीच मंगला जल्दी से आंखें पोंछ लेती है।

नफर बोला, "कच्चे तेल का छौंकन लगाया था क्या ? दिखाओ तो ज़रा तुम्हारी आंख देखूं।"

शिशु की मां को उसकी यह बात ज्यादती लगी। उसको यह सब सहन नहीं हो रहा था। बोली, "निकल यहां से, छुआ-छूत किये कपड़े

पहने ही इधर आ गया। निकल रसोईघर से बाहर।"

लोहे की एक छड़ लिये उसे निकालने के लिए हिलाती जाती थी। बोली, "निकलता है या उस दिन की तरह बुलाऊं भूषण सिंह को ?"

पता नहीं भूषण सिंह का नाम सुनकर ही वह डर गया क्या जो चुपचाप रसोईघर से बाहर चला आया। और बाहर आकर बोला, "धत्त तेरी, तेरे भात गये जहन्नुम में। भात नहीं देगी तो क्या मैं मर जाऊंगा। देखता हूं बिना खाये रह सकता हूं या नहीं।"

शिशु की मां अब भी चुप रहने वाली नहीं थी। बोली, "हां, यही देख तू; मैं भी देखती हूं कि तू कब तक भूखा रह सकता है। अबकी बार इधर आया तो मार-मार कर ठीक कर दूंगी, कहे देती हूं।"

और कोई समझे या न समझे पर मालिक सब कुछ समझते थे।

पयमन्त से कहते, "ज़रा रसोईघर की तरफ ध्यान लगाकर सुन तो।"

पयमन्त आकर कहता, "रसोईघर की ओर तो जरा भी आवाज नहीं आ रही है। उधर तो ज़रा भी गड़बड़ी या हल्ला-गुल्ला नहीं है।"

"कोई गड़बड़ नहीं है ?"

अपने आखिरी दिनों में मालिक जब भी मालकिन को अपसे पास पाते तो लगता जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं। पर जैसे कहने का साहस नहीं होता था।

मालकिन पूछतीं, "मुझसे कुछ कहेंगे ?"

मालिक कहते, "मुन्ना कहां है ?"

"वह तो अपने कमरे है, बुलाऊं ?"

"नहीं, तुम्हीं बैठो कुछ देर मेरे पास।"

मालकिन बहुत देर तक उनके पास बैठी रहती हैं। बालों में कभी हाथ फेरती हैं तो कभी हल्के-हल्के सिर दबाने लगतीं।

फिर कहतीं, "कुछ कह रहे थे न ? कहिये।"

मालिक ने पूछा, "जमा-खर्च का हिसाब आजकल कौन देखता है ?"

मांजी ने कहा, "मैंने मुन्ना से कह रखा है देखने के लिए। वह बीच-बीच में खजांचीखाने में बैठकर देखता है।"

"हलदपोखर के बंधक संपत्ति वाले मुकदमे का क्या हुआ ?"

मांजी ने कहा, "वह सब देखने के लिए आपने जो आदमी रखे थे वे ही देख रहे हैं। आप उन सब बातों की फिक्र न किया करें।"

"वह लोग ठीक से संभाल सकेंगे ?"

"अगर नहीं संभाल सके तो न सही, आपको चिंता नहीं करनी चाहिये।"

मालिक चुप रह गए। कुछ देर बाद बोले, "काशी से एक बार गुरुदेव को बुलाना है।"

"क्यों ?"

मालिक ने कहा, "बहुत दिनों पहले काशी गये थे, तुम बहुत ज्यादा बीमार हो गई थीं। बहुत ही बीमार।"

मालकिन ने कहा, "हां, मुझे याद है।"

मालिक ने कहा, "याद रखने की तो बात ही है। मुझे भी याद है। उस बात को मैं किसी तरह भी मन से नहीं निकाल पा रहा हूं। घूम-फिरकर वे ही बातें मेरे हृदय को मथे जा रही हैं।"

"अब उन बातों का क्या प्रयोजन है ? मैं ठीक हो गई, इसे बाबा विश्वनाथ की दया ही समझिये।"

मालिक ने उक्त बात का विरोध करना चाहा। बोले, "नहीं री, नहीं। विश्वनाथ की दया-वश नहीं, बाबा विश्वनाथ की दया से ठीक नहीं हुई तुम। यह सब होनहार थी।"

एक दिन मालकिन ने मालिक के खास सेवक से पूछा, "मालिक कैसे हैं रे ?"

खास सेवक ने कहा, "मालिक पत्र लिख रहे थे, मांजी।"

मांजी मालिक के कमरे में गईं और बोलीं, "ऐसी खराब तबियत में भी पत्र लिखे बिना काम नहीं चलता क्या ? किसे लिख रहे हैं ?"

मालिक ने जवाब दिया, "काशी।"

"काशी में किसे ?"

"गुरुदेव को।"

इसके वाद मालिक अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे। मालिक के मरने के वाद मालकिन सव बातों में सर्वेसर्वा हो गई थीं। खजांचीखाने का हिसाव भी वे रोज़ का रोज समझ लेतीं। जगत्तारण बाबू एटर्नी हो गए थे। मामले-मुकदमे आदि की बातें वे ही आकर समझकर जाते थे। लड़के की पढ़ाई अधिक नहीं हुई इसका कोई उपाय भी नहीं था। पर मालकिन ने उनका हाथ खर्च वांध दिया था। खर्च वही में बहुत संशोधन किये थे। वहुत से फालतू खर्च वंद कर दिए थे।

कुल पुरोहित के लिए भी महीने की एक धोती, एक साड़ी, आधा मन दाल, एक सीधा और एक गमछा आदि।

गुरुदेव के नाम पर वार्षिक प्रणामी के तौर पर नगद पांच सौ रुपये वंधे हुए थे। साथ पाँच धोती, गुरुआनी के लिए तीन साड़ी, एक पुड़िया सिंदूर, तीन मन चावल और दो गमछे भी।

इन सवके अलावा और कई तरह के दान-पुण्य का भी खर्च था। जैसे हलदपोखर के जाति भाइयों के यहां दुर्गा-पूजा अनुष्ठान होता तो पूजा के चढ़ावे के तौर पर कपड़े, चद्दर एवं रुपये आदि भिजवाये जाते। ऐसे अनगिनत खर्चे वंधे हुए थे। यह सव नियम संसार सेन के अमल से ही चले आ रहे हैं। जैसे-जैसे इस वंश की आर्थिक उन्नति होती गई वैसे ही प्रसाद एवं दान-धर्म की लिस्ट भी वड़ी होती गई। पर तव तो धान मिल थी, तेल मिल थी, वेलघाटा में भूसे की भी आमदनी थी, तिजारत एवं महाजनी आदि बहुत कुछ था। जव आमदनी के इतने रास्ते थे तो कुछ फर्क भी नहीं पड़ता। अव जव आमदनी नहीं रही तो खर्च भी तो वंद करने पड़ेंगे। भगवान ने अगर फिर से कमाई दी तो इन सवको

वापस शुरू करना क्या मुश्किल है ?

मांजी खुद खड़ी सब कुछ सुन रही हैं तथा कालीपद बाबू यह सारी लिस्ट पढ़कर सुना रहे हैं।

मांजी ने कहा, "पांच की जगह दो धोती, और नगद एक सौ रुपये, बस इतने से ही काम चलाओ।"

फिर पूछा, "वड़े वावू का हाथ खर्च पिछले महीने कितना लिया था ?"

"जी, चौबीस हज़ार सात सौ तिरसठ रुपये नौ आना।"

मुन्ना का अब पहले जैसा स्वभाव नहीं रहा। पहले से बहुत सुधर गया है। पहले महीने में चार-पांच वार बाहर जाता था। पर अब एक वार जाता है। किसी-किसी महीने बहुत हुआ तो दो बार। लेकिन जब भी जाता है उसके साथ मास्टर जगत्तारण वावू अवश्य रहते हैं। अभी भी जाने से पहले मांजी के चरण-स्पर्श करने अवश्य आते हैं। पत्नी से भी मिलकर जाते हैं। मांजी पिस्ता-बादाम का शरबत तैयार करवाकर पिलाती हैं। मछली का मुंड और साथ में घर का असली घी खिलाती हैं।

मुन्ना आकर मां को प्रणाम कर कहता,

"तो फिर, आज्ञा दो मां।"

चुन्नट डाली बांहवाला कुरता और चुनी हुई किनारी वाली शांति-पुरी धोती पहने आकर बरामदे में पम्प शू की जोड़ी खोल मां के कमरे में पधारता मुन्ना और झुककर मां के पांव छू हाथ माथे से लगाता।

मां जी कहतीं, "तबियत तो ठीक है नहीं। ऐसी हालत में बाहर जाने की क्या ज़रूरत थी ?"

वड़े वावू कहते, "पड़े-पड़े शरीर दुखने-सा लगा है।"

मांजी ने कहा, "तो फिर एकबार डॉक्टर वावू को बुलाना ही ठीक रहता।"

वड़े वावू ने कहा, "डॉक्टर-वाक्टर वाली कोई बात नहीं है, मां। वेकार ही मुंह का स्वाद भी वेस्वाद होता और रुपये भी लगते।"

और फिर मांजी बेटे को हिदायत कर देतीं, "पर शरीर पर अधिक अत्याचार मत करना कहे देती हूं, पहले से ही तबियत खराब है।"

तब फिर बड़े भक्ति-भाव से मां के चरणों की धूल माथे से लगा कर बड़े बाबू जायेंगे पत्नी के कमरे में।

बहू इतनी देर से कान लगाये मां-बेटे का वार्तालाप शुरू से ही सुन रही थी। बल्कि सुबह से ही सारी बातें सुन रही है। सुबह से ही तैयारी हो रही थी। वह खुद भी सुबह से ही सजने-संवरने में व्यस्त थी। अलमारी में से सबसे अच्छी साड़ी निकालकर पहनी थी। कान, नाक एवं हाथों में गहने पहने। इतनी सारी साज-सज्जा सिर्फ पांच मिनट के लिए।

बड़े बाबू के कमरे में प्रवेश करते ही पत्नी अंगवानी के लिए आगे बढ़ी।

बड़े बाबू ने कहा, "तो, मैं जा रहा हूं।"

"आज फिर ? आखिर क्यों ?"

"जाने दो, ज़रा परिवर्तन हो जाए।"

"क्या जाये बिना नहीं चल सकता ? आपकी तबियत भी ठीक नहीं है। शरीर का यह हाल लिए क्यों जा रहे हैं आप ?"

बड़े बाबू ने कहा, "शरीर बहुत ही दुख रहा है एक जगह पड़े-पड़े जाऊं न ?"

उसके बाद गुलमोहर अली गाड़ी तैयार करता। अब्दुल दरवाज़ा खोलकर खड़ा रहता। और नफर ? जिस नफर की महीने के उनतीस दिन कोई सुध ही नहीं लेता, जिस नफर की इतने दिनों तक किसी की नज़र में कौड़ी भर भी कीमत नहीं थी, उसी नफ़र का आज काया-कल्प हो गया मानो। सफेद कुरता, उसके नीचे सिल्क की लाल गंजी, पॉकेट में पैसे खनखना रहे हैं, बाल कटे-छंटे। आज उसके ठाठ के क्या कहने

वह जोर से दहाड़ता है, "गुलमोहर, गाड़ी ले आओ।"

आज कितने ही काम हैं उसे ! एटर्नी ऑफिस से वही जाकर

जगत्तारण वावू को ले आया है। उसने ही अकेले सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। सिर्फ जगत्तारण बावू ही क्या ! वड़े वावू की सभी इच्छाओं का ध्यान रखना, उनकी हर ज़रूरत पूरी करना आदि सभी काम उसके ही जिम्मे तो रहते हैं। वड़े बाबू की चुन्नट की हुई धोती का छोर यदि ज़मीन पर लटक रहा हो तो नफर ही ध्यान रखकर उठा-येगा। वड़े बावू का विशेष खयाल रखना ही नफर का काम है आज। वड़े वावू को अगर नींद आ रही है तो नफर ही तकिया आगे वढ़ा देगा। वड़े वावू को अगर सिगरेट की तलब लगी है तो नफर ही माचिस की तीली जलाकर सिगरेट सुलगा देगा। मकान के लोगों पर आज के दिन वहुत ही रौब गांठता नफर, "ऐ, हट जाओ सव, हट जाओ। अभी कुछ नहीं हो सकता। इस वक्त बावू वाहर जा रहे हैं।"

कालीदास खजांची और मोहरी वाबू उसके सब ढंग देखकर मन-ही-मन वल खाते रहते।

जव अधिक ही गुस्सा आता तो आपस में फुसफुसाते हुए वातें करते, "नफर वेटे का दिमाग तो देखिए, आज तो ऐसे रौब झाड़ रहा है जैसे लाट साहव हो।"

पर उस दिन नफर के सामने कुछ कहने की हिम्मत किसीकी नहीं होती। यहां तक कि उसके इतना हो-हल्ला करने पर ज़रा-सा हंसने या मुस्कराने तक की हिम्मत नहीं होती। वड़े बावू की जवान पर तो उस दिन वस नफर ही नफर का नाम रहता।

उस दिन वड़े वावू सुवह से ही नफर ही नफर की रट लगाए रहते, खास सेवक से पूछते, "हां रे, आजकल नफर दिखाई नहीं देता ?"

नफ़र भी कुछ कम नहीं था। सीधा जाकर बड़े वावू के चरण-स्पर्श कर हाथ जीभ से छुआता।

वड़े वावू को मानो वातचीत करने में भी वहुत तकलीफ हो रही है। वोलते, "आजकल कहां रहते हो, दिखाई नहीं देते ? एक वार जगत्तारण वावू को खवर देनी थी।"

"जी हुजूर, अभी जाता हूं।"

इतना कह वह घुमावदार सीढ़ियों पर धड़धड़ाता हुआ उतरता है। उस समय अगर कोई उससे टकरा जाता तो वस इलाही कांड मच जाता।

नफर चिल्ला-चिल्लाकर कहता, "दिखाई नहीं देता उल्लू कहीं के? अन्धे हो क्या? चल वड़े वावू के पास। इसी वक्त चल।"

उस वक्त अगर नफर को अधिकार होता तो उस व्यक्ति का सिर ही उतार लेता। वड़े वावू मांजी को प्रणाम कर तथा पत्नी से भेंट कर नीचे आते उस वक्त जगत्तारण वावू सामने खड़े ही मिलते। वड़े बाबू को देखते ही आगे वढ़ आते। वड़े वावू धीरे-धीरे जाकर गाड़ी में वैठते। उनके वैठते ही जगत्तारण वावू भी उनके पीछे-पीछे गाड़ी में सवार हो जाते। उसके वाद अब्दुल दरवाजा वंद कर देता गाड़ी का।

दरवाजा वंद होने से पहले नफर एक वार गाड़ी में झांककर कहता, "तो हुजूर, गाड़ी हांकूं?"

वड़े वावू कहते, "हां-हां, जल्दी हांक, इतनी देर किस वात की हो रही है?"

वस उसके वाद कोई वातचीत नहीं होती। भूपण सिंह गेट खोले खड़ा ही था, नफर फटाक से गुलमोहर अली सईस की वगल में जा बैठा और वोला, "चलो वेलघरिया।"

वड़े वावू की वाग वाली हवेली वेलघरिया में है। मांजी ने जगत्तारण वावू से कई वार कहा, "आप तो इस घर के हालात से पूर्णतः परिचित हैं। आपने हिसाव-किताव के खाते-वही तक देख रखे हैं। अब पहले जैसी आय तो रही नहीं, अतः लड़के को समझा-बुझाकर ज़रा वाग-हवेली जाना कम करवाइये।"

जगत्तारण वावू चापलूसी करते-से कहते, "मैं तो वहुत समझाता

रहता हूं मांजी, पहले से काफी सुधरे भी हैं। अब महीने में एक बार ही जाते हैं। आप देखिएगा धीरे-धीरे जाना एकदम बंद कर देंगे।"

"आप ही देखिये न, अब पहले जैसा स्वास्थ्य भी नहीं रहा उसका।"

"वह तो है ही। अब एक प्याले में ही लड़खड़ाने लगते हैं।"

मांजी बुझे स्वर में कहतीं, "आप ही उसके मास्टर रहे हैं बचपन से, अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें। अब भी आप उसके गुरु समान ही हैं, आपका ही भरोसा है।"

लड़के के जाने के बाद मांजी बहू को आवाज़ देतीं, "बहू !"

बहू आकर सिर झुकाये खड़ी हो जाती।

मांजी पूछतीं, "मुन्ना तुमसे मिलकर गया है क्या ?"

बहू कहतीं, "हां।"

"कब आयेगा कुछ कह गया है ?"

बहू जवाब देतीं, "कह रहे थे, जल्दी ही आ जाऊंगा।"

बड़े बाबू हर बार जल्दी आने का वचन देकर जाते पर आते हर बार देर से। तीन दिन और तीन रातों के पहले वे कभी नहीं लौट पाते। बड़े बाबू के बेलघरिया पहुंचने से पहले ही वहां उनके आने की खबर पहुंच जाती। नफर गाड़ी की छत से उतरकर बड़े बाबू को सहारा देकर उतारता है। धोती की किनारी जमीन छू रही होती, उसे भी नफर ही अपने हाथों में थामे रहता। उसके बाद जगत्तारण बाबू से कहता, "आप भी उतर आइये, सर।"

बड़े बाबू कहते, "देख, बोतल वगैरह इसी में पड़ी है।"

नफर कहता, "नफर के रहते आप चिंता न करें, सर।"

उसके बाद बगान-बाड़ी के नौकर-चाकर दौड़े आते। और आते ही सबके-सब पहले बड़े बाबू के पैर छूते।

बड़े बाबू पूछते, "तुम सबके क्या हाल-चाल हैं रे ?"

"जी, बस आपका आशीर्वाद है।" सभी एक स्वर में जवाब देते।

जगत्तारण बाबू नफर को अपने पास बुलाकर कहते, "नफर,

तवलची को तो खवर दे दी है न ? अभी तक आये कैसे नहीं ?"

नफर कहता, "सव ठीक है ऐटर्नी वावू, आप चिन्ता मत कीजिये। नफर कोई वात नहीं भूलता।"

"और माला ? फूलों की माला का क्या हुआ ?"

नफर ने जवाव दिया, "फूलवाले को सात रुपये पेशगी दे आया हूं। वह खुद फूल दे जायेगा।"

वड़े वावू हांफते हुए किसी तरह सीढ़ी चढ़ते। नफर उनसे पहले ऊपर जा दरी पर विछी सलवट एवं धूल हाथों से झाड़कर ठीक कर देता है। तकिया ठीक स्थान पर रखकर कहता, "वैठिये, सर।"

फिर नफर आवाज देता, "ऐ राधारमण या श्यामरमण, क्या नाम है रे तेरा ?"

नौकर हड़वड़ाकर दौड़ा आता और कहता, "मुझे गोकुल कहते हैं।"

"अच्छा-अच्छा, एक ही वात है। साहव को हवा कर न वेटे। देख नहीं रहा साहव को कितने पसीने आ रहे हैं।"

वड़े वावू ने कहा, "पहले एक गिलास पानी।"

"अरे कोई है ? यष्टि, यष्टिचरण या गुष्टिचरण, पता नहीं क्या नाम है वेटे लोगों का।"

गोकुल ने कहा, "मैं ला रहा हूं पानी।"

"नहीं, यह आ तो गया है यष्टिचरण। अरे, जा अच्छी तरह साबुन से हाथ धोकर वर्फ डालकर एक गिलास ठंडा पानी ले आ।"

उसको आदेश देने के पश्चात नफर वड़े वावू के कान के पास अपना मुंह लेजाकर पूछता, "सर, सोडा डालूं ?"

वड़े वावू मानो ऊवते हुए से वोले, "अरे भई होगा, वह सव भी होगा। इतनी जल्दी किस वात की है ? ज़रा सुस्ताने तो दे।"

जगत्तारण वावू कहते, "नफर, पहले देख ज़रा तवलची आये कि नहीं ?"

वड़े वावू ने कहा, "तवलची की क्या जरूरत है, मास्टर ?"

जगत्तारण बाबू ने कहा, "ज़रा गाना-बजाना तो होने दीजिये। बहुत दिनों से अच्छा गाना-बाना नहीं सुना।"

बड़े बाबू ने कहा, "मैं तो यहां आराम करने [illegible] मैं देख रहा हूं, तुम मुझे यहां भी आराम नहीं करने दोगे।"

"तो आप की इच्छा नहीं तो कोई बात नहीं। [illegible] तबलची आ जाय तो उसे कहना वापस चला जाय।"

बड़े बाबू ने कहा, "तुममें यही सबसे बड़ा [illegible] है [illegible] कि तुम बेमतलब ही नाराज़ हो जाते हो। [illegible] भेजने की क्या ज़रूरत है? नफर, मेरा हुक्का तैयार करवाओ।"

नफर ने आवाज दी, "अबे ओ [illegible] ही चला, तमाखू भी ला। इतनी देर [illegible] कर वह सिगरेट का डिब्बा खोलकर उनके सामने रख देता है।

सहसा बगल के दरवाज़े का परदा हिला।

नफर बड़े बाबू के कान के पास मुंह ले जाकर बोला, "मां आती हैं, बड़े बाबू।"

सिर से पैर तक टस्सर के कपड़ों में लिपटी एक वृद्धा भीतर आई।

जगत्तारण बाबू ने खिसक कर ज़रा जगह करते हुए कहा, "आइये मांजी, यह देखिये आज किसे पकड़ लाया हूं।"

बड़े बाबू ने कहा, "नहीं-नहीं, यह बात नहीं है। मैं तो कई दिनों से खुद ही आने की सोच रहा था। मौका नहीं लगा आने का।"

बड़े बाबू ने मांजी के पैर छूकर हाथ माथे से लगाया।

महिला गद-गद होती हुई बोलीं, "जस-जस, चिरंजीव रहो बेटा। मैं भी कई दिनों से यही सोच रही थी, लड़का आया नहीं. क्योंकि [illegible] की तबियत जो ठीक नहीं है।"

इतनी देर से नफर चुपचाप बैठा था। अब तुरंत [illegible]

भाभीजी को क्या तकलीफ है, मांजी?"

"कल से दांत कनकना रहे हैं उसके। कल से मुंह में कुछ नहीं लिया है। पान का तो नशा है। अतः पान मुंह में दबा कर रखे विना तो एक मिनट भी नहीं रह सकती मेरी टेंपी।"

नफर ने कहा, "अब कैसी तवियत है भाभी जी की ?"

महिला ने जवाब दिया, "आज तो सिर्फ दो पान खाये हैं उसने। मैंने हमामदस्ते में कूटकर दिये थे। मैंने कहा, भात खाये विना तो तू रह सकती है पर पान विना नहीं रह सकेगी, अतः ऐसे नहीं खाया जाता तो ले हमामदस्ते में कूटकर चूर कर देती हूं। खैर, उसकी वात छोड़ो। तुम्हारी माता जी कैसी हैं वेटा ?"

वड़े वावू ने कहा, "ठीक हैं।"

मानों यह वात सुन महिला को वहुत खुशी हुई हो। इस तरह बोलीं, "हां···वेटा, ठीक रहने में ही खुशी है, वेटा। मांजी की खास सम्हाल रखो वेटे। दुनिया में मां के समान और कोई नहीं, वेटे। और मेरी वहूरानी कैसी है ?"

वड़े वावू ने कहा, "ठीक है। आप कैसी हैं, मांजी ?"

"मेरी क्या पूछते हो वेटा, तुम्हें और टेंपी को सकुशल देखती हुई मरूं तो मेरा जनम सफल हो जाय। मैं टेंपी से हरदम कहती रहती हूं, मेरा वेटा वहुत सीधा है, तेरी किस्मत अच्छी थी जो ऐसा पति मिला है तुझे। हां, तेरी तवियत तो ठीक है न ? आज रात क्या खायेगा वेटा ?"

वड़े वावू ने कहा, "आप अपने हाथ से जो वनाकर खिला देंगी वही खा लूंगा। मेरे खाने-पीने की चिन्ता मत कीजिये।"

महिला ने कहा, "आज मुर्गी के चॉप वनाये हैं। और महीन पेशावरी चावलों का पुलाव।"

नफर ने दाद देते हुए कहा, "तौवा-तौवा !"

वड़े वावू ने नफर से कहा, "तू चुप वैठ।" और फिर महिला की ओर आकृष्ट होकर कहा, "आपका शरीर अव इतनी मेहनत करने

लायक नहीं है। वेकार ही क्यों इतना झंझट किया आपने ?"

"इसे मेहनत कहते हो वेटा ? वेटे के लिये कुछ करने में क्या मां को कष्ट होता है ? हां, मेरे साथ-साथ टेंपी भी सुवह से इस तैयारी में लगी हुई है।"

वड़े वावू ने कहा, "इस तरह तवियत खराव कर-करके खाना वनाने की क्या आवश्यकता थी ?"

"तो क्या हुआ ? लड़के को किसी चीज का खास शौक हो और मैं हाथ-पर-हाथ धरे वैठी रहूं। टेंपी ने कहा, तुम्हें मुर्गी के चॉप वहुत पसंद हैं। अतः···। अच्छा वैठो, तुम ज़रा दो मिनट वैठो। मैं ेंपी को भेज रही हूं।"

संसार सेन के अमल से ही इस वंश में न जाने कितनी टेंपी और कितनी ही पुतलीमाला आई और गईं। इस वात का सही विवरण तो खजांची खाने का नत्थीपत्र देखने पर ही मिल सकता है। सिर्फ यही नहीं, उन नत्थीपत्रों में और भी वहुत कुछ मिलेगा। इस वंश की आय-व्यय के व्योरे के साथ-साथ उनके अन्याय एवं अपव्यय की भी लम्वी फेहरिस्त मिलेगी। पुराने जमाने से चली आ रही एक परंपरा क्षीण होती-होती वहुत कम हो चुकी है लेकिन फिर भी उसके कीटाणु शिरा-उपशिराओं में अव भी मौजूद हैं। मुर्गी के चॉप, फूलों की माला, तवलची और टेंपी के दांतों का दर्द आदि में न किसी दिन व्यवधान आया है, न अव आ रहा है। सिर्फ टेंपी ही नहीं, ज्वेलर्स मनसुख लाल कंपनी के सेठजी भी आयेंगे। आकर हीरे, पन्ने, मोती आदि जड़ाऊ जेवरों के नमूने निकालेंगे। पिछली वार के जेवरों के रुपये इस वार शोध होंगे। और इस वार जड़ाऊ नेकलेस के दाम अगली वार मिल जायेंगे। वड़े वावू नये तो हैं नहीं। पहचाना हुआ घर है। भले ही इनके हिसाव में हजारों-लाखों ही उधार रह जाय फिर भी चिन्ता की क्या वात है ? ज्वेलर्स मनसुख लाल कम्पनी कभी तगादा नहीं करेगी। और फिर खजांची वावू हिसाव के खाते में वड़े वाव के नाम मोटा खर्चा

"कल से दांत कनकना रहे हैं उसके। कल से मुंह में कुछ नहीं लिया है। पान का तो नशा है। अतः पान मुंह में दबा कर रखे बिना तो एक मिनट भी नहीं रह सकती मेरी टेंपी।"

नफर ने कहा, "अब कैसी तबियत है भाभी जी की ?"

महिला ने जवाब दिया, "आज तो सिर्फ दो पान खाये हैं उसने। मैंने हमामदस्ते में कूटकर दिये थे। मैंने कहा, भात खाये बिना तो तू रह सकती है पर पान बिना नहीं रह सकेगी, अतः ऐसे नहीं खाया जाता तो ले हमामदस्ते में कूटकर चूर कर देती हूं। खैर, उसकी बात छोड़ो। तुम्हारी माता जी कैसी हैं बेटा ?"

बड़े बाबू ने कहा, "ठीक हैं।"

मानों यह बात सुन महिला को बहुत खुशी हुई हो। इस तरह बोलीं, "हां···बेटा, ठीक रहने में ही खुशी है, बेटा। मांजी की खास सम्हाल रखो बेटे। दुनिया में मां के समान और कोई नहीं, बेटे। और मेरी बहूरानी कैसी है ?"

बड़े बाबू ने कहा, "ठीक है। आप कैसी हैं, मांजी ?"

"मेरी क्या पूछते हो बेटा, तुम्हें और टेंपी को सकुशल देखती हुई मरूं तो मेरा जनम सफल हो जाय। मैं टेंपी से हरदम कहती रहती हूं, मेरा बेटा बहुत सीधा है, तेरी किस्मत अच्छी थी जो ऐसा पति मिला है तुझे। हां, तेरी तबियत तो ठीक है न ? आज रात क्या खायेगा बेटा ?"

बड़े बाबू ने कहा, "आप अपने हाथ से जो बनाकर खिला देंगी वही खा लूंगा। मेरे खाने-पीने की चिन्ता मत कीजिये।"

महिला ने कहा, "आज मुर्गी के चॉप बनाये हैं। और महीन पेशादरी चावलों का पुलाव।"

नफर ने दाद देते हुए कहा, "तौबा-तौबा !"

बड़े बाबू ने नफर से कहा, "तू चुप बैठ।" और फिर महिला की ओर आकृष्ट होकर कहा, "आपका शरीर अब इतनी मेहनत करने

लायक नहीं है। बेकार ही क्यों इतना झंझट किया आपने ?"

"इसे मेहनत कहते हो बेटा ? बेटे के लिये कुछ करने में क्या मां को कष्ट होता हैं ? हां, मेरे साथ-साथ टेंपी भी सुबह से इस तैयारी में लगी हुई है।"

बड़े बाबू ने कहा, "इस तरह तबियत खराब कर-करके खाना बनाने की क्या आवश्यकता थी ?"

"तो क्या हुआ ? लड़के को किसी चीज़ का खास शौक हो और मैं हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रहूं। टेंपी ने कहा, तुम्हें मुर्गी के चॉप बहुत पसंद हैं। अतः···। अच्छा बैठो, तुम जरा दो मिनट बैठो। मैं ेंपी को भेज रही हूं।"

संसार सेन के अमल से ही इस वंश में न जाने कितनी टेंपी और कितनी ही पुतलीमाला आई और गईं। इस बात का सही विवरण तो खजांची खाने का नत्थीपत्र देखने पर ही मिल सकता है। सिर्फ यही नहीं, उन नत्थीपत्रों में और भी बहुत कुछ मिलेगा। इस वंश की आय-व्यय के ब्योरे के साथ-साथ उनके अन्याय एवं अपव्यय की भी लम्बी फेहरिस्त मिलेगी। पुराने जमाने से चली आ रही एक परंपरा क्षीण होती-होती बहुत कम हो चुकी है लेकिन फिर भी उसके कीटाणु शिरा-उपशिराओं में अब भी मौजूद हैं। मुर्गी के चॉप, फूलों की माला, तबलची और टेंपी के दांतों का दर्द आदि में न किसी दिन व्यवधान आया है, न अब आ रहा है। सिर्फ टेंपी ही नहीं, ज्वेलर्स मनसुख लाल कंपनी के सेठजी भी आयेंगे। आकर हीरे, पन्ने, मोती आदि जड़ाऊ जेवरों के नमूने निकालेंगे। पिछली बार के जेवरों के रुपये इस बार शोध होंगे। और इस बार जड़ाऊ नेकलेस के दाम अगली बार मिल जायेंगे। वड़े बाबू नये तो हैं नहीं। पहचाना हुआ घर है। भले ही इनके हिसाब में हजारों-लाखों ही उधार रह जाय फिर भी चिन्ता की क्या बात है ? ज्वेलर्स मनसुख लाल कम्पनी कभी तगादा नहीं करेगी। और फिर खजांची बाबू हिसाब के खाते में बड़े बाबू के नाम मोटा खर्चा

लिखेंगे, "चौबीस हज़ार, सात सौ तिरसठ रुपये नौ आना।"

उस वक्त रात बहुत गहरी थी। मांजी के कमरे की खिड़की से जितनी दूर तक दिखाई देता था सर्वत्र घोर अंधेरा था। सभी मकानों की बत्तियां बुझ चुकी थीं। बहू के कमरे के खिड़की-दरवाज़े भी बंद थे। मांजी का बुलावा आने के इंतजार में कमरे से बाहर सिन्धु शायद सो चुकी थी।

गुरुपुत्र बहुत देर पहले ही वहां से जा चुके थे। काशी के पंडित गिरीगंगाधर वाचस्पति के पुत्र हैं वह। वह बहुत से वंशों के गुरु थे।

जाने से पहले गुरुपुत्र ने कहा था, "यह चिट्ठी पिताजी ने मुझे दी थी। आज से बीस साल पहले मालिक ने यह चिट्ठी मेरे पिताजी को लिखी थी।"

तब से यह चिट्ठी उनके पास पड़ी थी। मालिक के खुद के हाथ की लिखी हुई चिट्ठी थी। मांजी को ध्यान आया कि मालिक ने मृत्यु के कुछ दिनों पहले चिट्ठी लिखी तो थी पर वह चिट्ठी काशी के वाचस्पति महाशय को लिखी थी, यह बात आज इतने दिनों बाद पता लगी।

मांजी बार-बार उस चिट्ठी को उठाकर देख रही थीं।

अपनी जिन्दगी में पढ़ना-लिखना उन्होंने सीखा ही नहीं। किसी ने उन्हें पढ़ाने-लिखाने की आवश्यकता भी नहीं समझी। एक जमाना बीत गया उन बातों को जब पांच साल की उम्र में वे इस घराने में दुल्हन बनकर आई थीं। लेकिन ये तो बहुत दिनों पहले की बातें हैं। वे तो भूल भी गई हैं उन बातों को। इतनी बड़ी हवेली और इन लोगों का इतना पैसा अब सारा उनके खुद के अधिकार में ही तो है।

मालिक कहते, "यही नियम है।"

मांजी कहतीं, "क्या, नियम कभी बदलते नहीं?"

"कौन बदलेगा इनको?"

"क्यों ? आप ही इस घर के मालिक हैं, आपको ही यह नियम बदलना चाहिये।"

मालिक कहते, "बदलने से फायदा भी क्या है। इस घर का जो नियम चला आ रहा है उसे मानकर चलना ही बेहतर है।"

मांजी कहतीं, "इसका मतलब बैठे-बैठे खायेंगे सब ?"

मालिक कहते, "लेकिन उन्हें छोड़ भी दिया जाय तो कहां जायेंगे वे लोग ? आज जो काम कर रहे हैं यहां, इस घर में, उन लोगों के बाप ने, दादा ने भी यहीं काम करके ज़िन्दगी काटी है। इसके अलावा, इन लोगों के लड़के-बच्चे होंगे वे भी इसी घर में काम करेंगे। उन लोगों का जन्म ही हम लोगों की सेवा करने के लिये हुआ है। तुम इन सब बातों में अपना दिमाग मत उलझाओ।"

गाय का तीस सेर दूध होता था घर में। मांजी ने आदेश दिया, "जितना दूध ज्यादा रहता है उसका घी निकाला जाय। जब रसोईघर में काम करने वाले लोग हैं तो फिर कोई चीज़ नष्ट क्यों की जाय ?"

सिर्फ दूध की ही क्या बात है ? उस छोटी-सी उम्र में ही जब वे दुल्हन बनकर आई थीं तब से जैसे-जैसे वे समझदार होती गईं वैसे-वैसे कहीं भी अन्याय, फिजूल-खर्च आदि देखतीं तो उन्हें सहन नहीं होता था। किसी प्रकार का अनियम भी वे सहन नहीं कर पाती थीं। पर जैसे-जैसे वक्त गुजरता गया, उन्हें सब कुछ सहन होने लगा। अगर नहीं सहन होती थी तो वह थी झूठी बात।

वे कहा करतीं, "झूठ मैं किसी तरह भी सहन नहीं करूंगी।"

पहले की बात है, मुन्ना यानी बड़े बाबू जब जवान हो गये थे तो शुरू-शुरू में अचानक न जाने कहां रह जाते थे। सारा दिन, सारी रात बीत जाती पर वे घर नहीं लौटते। फिर दो दिन बाद वापस अपने आप लौट भी आते।

मांजी पूछतीं, "कहां था इतने दिन ?"

बेटा जवाब देता, "कार्य-वश उलझ गया था मां, इसीलिये नहीं

आ पाया।"

"कहां उलझ गया था ?"

पर इसका कोई जवाब नहीं होता।

मांजी कुछ कड़ाई से फिर अपना प्रश्न दोहरातीं, "बोलो ?"

पर फिर भी जवाब नदारद।

"बोलो ! मेरी बात का जवाब दो।"

बेटा कहता, "दोस्त के घर।"

"किस दोस्त के घर ?"

अब कोई जवाब नहीं सूझता था बड़े बाबू को।

मांजी पूछतीं, "साथ कौन था ?"

बेटा जवाब देता, "मास्टर।"

"कौन, जगत्तारण बाबू ? और कौन था ?"

"और नफर था।"

तुरन्त जगत्तारण बाबू को बुलाया गया। जगत्तारण बाबू ने उ
ही कहा, "मां जी, आपसे एक भी शब्द झूठ नहीं बोलूंगा। हम
बगान गये थे।"

मांजी कहतीं, "अच्छा, अब आप जाइये।"

उसके बाद नफर को बुलवाया गया। नफर को उचित-अनु
बहुत कुछ कहकर डांटा मांजी ने। उसके बाद हुक्म हुआ कि नफर
नीम के पेड़ से बांधकर पच्चीस जूते लगाये जायं। और यह क्या
दिन की बात थी। सबका एक ही मत था कि नफर ही मुन्ना बाबू
खराब कर रहा है। जगह-कुजगह वही ले जाता है उन्हें। बदमाश क
का। सारे घर में हलचल-सी मच गई। सिर्फ इसके अलावा और व
बात ही नहीं थी किसीके पास कि आज नफर को नीम के पेड़ से ब
कर पच्चीस जूते मारे जायेंगे।

लोहे की नाल लगा जूता और सिर से पैर तक जकड़कर ब
गया नफर।

भूषण सिंह नफर को कस-कसकर जूते मार रहा है और नफर के शरीर से दरदराकर खून वह रहा है। नफर असह्य पीड़ा से बिलबिलाकर चीखता है, "अब कभी नहीं करूंगा, कभी नहीं करूंगा। छोड़ दो मुझे। छोड़ दो।"

गिनकर पच्चीस जूते मारे गये। जब पच्चीसवां जूता मारा गया तव नफर वेहोश-सा हो गया था। खून से लथपथ रस्सी खोलते ही वह वहीं जमीन पर धम से गिर पड़ा।

मांजी ने शाम को फिर जगत्तारण वावू को बुलवा भेजा।

जगत्तारण वावू आये।

ऊपर से मांजी ने कहा, "संसार सेन के वंश का लड़का पान-बगान में रात गुजारे यह वहुत ही शर्म की बात है, मास्टर महाशय।"

जगत्तारण वावू ने सहज ही स्वीकार कर लिया, "शर्म की बात तो है ही, मां-जननी।"

"तो फिर आप इतने दिनों तक मालिक के साथ रह चुके हैं, फिर भी आपको इस वात का ज्ञान नहीं हुआ? वाज़ार में क्या और इससे अच्छी जगह नहीं थी? मालिक की वेलघरिया वाली बगानवाड़ी भी तो यों ही पड़ी है। क्या वहां नहीं जा सकते थे?"

जगत्तारण वावू ने कहा, "अजी, में तो बस निमित्त मात्र ही हूं।"

मांजी ने कहा, "नहीं, आप ज़रा अच्छी-सी एक लड़की खोजिये। उसीको वगान वाड़ी में रखिये। जो भी खर्चा लगेगा, मैं दूंगी।"

जगत्तारण वावू मां जी के चरणों की धूल ग्रहण कर चले गये।

और जगत्तारण वावू ने उसी दिन टेंपी को ढूंढ़ निकाला। वह रामवगान के एक घर में अपनी मां के साथ रहती थी। वहुत गरीवी में दिन काट रही थीं मां-वेटी। उसीको जगत्तारण वावू साथ ला मांजी को दिखा गये। लड़की हट्टी-कट्टी थी। साफ-सुथरा रंग था। लड़की ने मांजी को प्रणाम करना चाहा।

लेकिन मांजी ने अपने पैर पीछे खींच लिये और वोलीं, "छूना मत

वावा, मुझे छूना मत।"

लड़की की गढ़न आदि को खूब गौर से परखा मांजी ने। उसे आगे-पीछे घुमाकर चारों ओर से परखा और पाया, लड़की में कहीं कोई कमी नहीं।

मांजी ने पूछा, "तेरा नाम क्या है ?"

लड़की ने जवाब दिया, "टेंपी।"

मांजी ने टेंपी की मां से कहा, "तुम्हारी लड़की तो अच्छी है, आगे तुम्हारी लड़की का भाग्य। जाओ तुम लोग।"

उसके वाद वेलघरिया वाली वगानवाड़ी की मरम्मत करवाने का आदेश दिया मांजी ने। वहां पलंग, विस्तर आदि सभी कुछ हैं, लेकिन मालिक के चले जाने के वाद और किसीने भी उन्हें काम में नहीं लिया था। मसनद-गद्दे आदि सव पुराने हो गए थे। अलमारी का कांच टूट गया था। सव-कुछ फिर से सुधराया गया। और फिर शुभ दिन देखकर टेंपी और टेंपी की मां ने वहां प्रवेश किया था।

फिर यथासमय वड़े वावू की शादी हुई। घर में वहू आयी। कितने दिन वीत गये। मां जी अकेली ही सारा भार संभाल रही थीं। समूचे परिवार की जीवन-यात्ना में वे ही सर्व-सर्वा बन सारी व्यवस्था चलाती आई हैं। उनके किसी भी कार्य का विरोध करने वाला कोई नहीं था। जिसने भी उनके नियमों को तोड़ा उसे उन्होंने कड़ी-से-कड़ी सजा दी है।

लेकिन आज तो लगता है उन्हें ही सजा मिली है।

मां जी ने अपने पति की लिखी चिट्ठी को फिर एक वार देखा। स्याही की आड़ी-टेढ़ी लिखावट जो उनकी समझ से बाहर थी। वीस व... पहले उनके पति ने अपने गुरु गिरीगंगाधर वाचस्पति को लिखी थी य... चिट्ठी।

गुरुपुत्न ने कहा, "मालिक महोदय ने अपने इस पत्न में लिखा है संपत्ति पर जितना हक सुवर्ण का है उतना ही नफ़र का है। पिताजी

भी यही कहा था, "वह तो विवाहित पत्नी से जन्मी सन्तान है अतः उसका समान अधिकार ही है।"

"पर मैं तो पुत्र गोद ले चुकी हूं!"

"लेकिन उन्होंने तो पिताजी को लिखा था कि वे नफर को ही गोद लेंगे। जिस दिन पुत्र गोद लेने की बात थी उस दिन आपके दरबान ने उसे घर में घुसने नहीं दिया।"

"तो इसमें पाप किसने किया है? और किसीके किये की सजा मेरा बेटा क्यों भुगते?"

गुरुपुत्र ने कहा, "काशी में उन्होंने सत्य का उच्चारण किया था। उस सत्य को किसी भी तरह नहीं बदला जा सकता। मेरे पिताजी ने यही कहा है।"

मांजी ने कहा, "पर जिन्होंने वचन दिया वह तो अब रहे नहीं।"

"पर आप तो उनकी धर्मपत्नी हैं। आप तो मौजूद हैं। उनके कर्मों के पाप-पुण्य की आप भी तो साझीदार हैं।"

यह सुन मांजी रो पड़ीं।

ओह, किस विश्वास के बल पर अब वे जीवित रहेंगी! इस वंश की विधवा बन क्या वे इसकी समाधि रचकर जायेंगी! अब तक बहुत-सा धन अपव्यय हुआ है, आज भी हो रहा है और शायद भविष्य में भी होगा लेकिन इस बिंदु पर आकर उन्हें लगा मानो वे हार गईं। मालिक जीवित होते तो उन्हें चिन्ता नहीं थी। पर आज उन्हें ऐसा महसूस हो रहा था मानो पग तले की मिट्टी खिसकी जा रही हो। इस घर में जितना अधिकार सुवर्ण का है उतना ही नफर का भी है। यह कैसे सम्भव हो सकता है? और मंगला! वे याद करने की कोशिश करने लगीं। वही मंगला, जिस पर काशी जाने से पहले भी उन्हें बार-बार सन्देह हुआ था।

उन्हें याद आया कि उस दिन उन्होंने मंगला को इसीलिए मालिक के सामने आने के लिए मना किया था।

लेकिन और किसीका भी खून उपलब्ध नहीं हुआ ?

"आपके खून से सभी का खून तो मिल नहीं सकता। इसीलिए पिताजी ने सारे लक्षणों को परखकर उसे ही चुना था।"

"लेकिन शादी करने की क्या आवश्यकता थी ?"

"आपके वंश की पवित्रता की रक्षा हेतु।"

मांजी ने विरोध किया, "न जाने कितने लोगों का खून कितने ही लोगों को चढ़ाया जाता है, वे तो कोई भी आपत्ति नहीं करते ?"

"नहीं करते होंगे, इसका मतलब पिताजी इस बिंदु को कैसे अग्राह्य कर देते ? उनके लिए तो जितना मूल्य अपने शिष्य के प्राणों का है उतना ही उसके धर्म का भी है।"

मांजी ने एक बार सीढ़ी के करीब जाकर पुकारा, "सिन्धु !"

सिन्धुमणी उस छोटी-सी जगह में गुड्डी-मुड्डी होकर सो रही थी। गहरी नींद में थी वह। सुबह गुरुपुत्र चले जायेंगे। फिर भेंट नहीं होगी। मालिक की चिट्ठी को अपनी मुट्ठी में से फिर निकाला। पति के हाथ की अंतिम लिखावट। एक बार चिट्ठी को माथे से छुआया, और बुदबुदायीं, "यह आपने क्या किया ? मुझे क्यों नहीं बताया ? आपके सारे पाप मैं हँसते-हँसते अपने माथे ले लेती। पर आपने मुझ पर अविश्वास क्यों किया ? आप मुझ पर विश्वास क्यों नहीं कर पाये ? मेरी गृहस्थी, मेरी संतान, मेरे श्वसुर एवं पति की जन्मभूमि को दो टुकड़े कर मैं कैसे जी पाऊंगी ? आप जहां कहीं भी हों, मुझे इसका जवाब दीजिये। आपने सोच लिया कि आपको तो मुक्ति मिल ही जायेगी। और आपने मुक्ति पा भी ली है, लेकिन मुझे कैसे बंधन में बांध गये ? मैं इस बंधन से कैसे मुक्ति पाऊं ? जवाब दो ! यह सारा तो मेरा है न ? आपने अपना वचन निभा दिया, अपनी बात रखी ? पर आज बीस बरसों बाद यह कैसा बोझ मेरे कंधों पर लाद दिया ? तीर्थस्थल पर दिया वचन अगर झूठा हो तो आप जहां कहीं भी हों उसका पाप मेरे साथ-साथ आपको भी स्पर्श किये बिना नहीं रहेगा। आप और मैं क्या अलग

हैं एक-दूसरे से ?"

मालिक ने गुरुदेव को जो पत्र लिखा था वह पत्र गुरुपुत्र ने पढ़कर सुनाना शुरू किया—

"परम वंदित श्री श्रीगिरीगंगाधर वाचस्पति महाशय के श्री चरणों में शत सहस्त्र प्रणाम कर गुरु महाशय के श्रीचरणों का ध्यान सदा सर्वदा करते हुए प्रार्थना करता हूं।..."

पत्र की शुरूआत इसी तरह की थी मालिक ने। मृत्यु से कुछ दिन पहले की लिखी चिट्ठी थी। अपनी जिंदगी के आखिरी दिनों में वह बहुत बेचैन रहते थे, यह याद है मांजी को। उस हालत में वे किसी से भी अधिकारपूर्ण कोई बात नहीं कह सकते थे। अपनी पत्नी एवं अपनी वैध संतान के रहते उन्होंने दत्तक ग्रहण किया। उनकी अपनी संतान उन्हींके घर में नौकर की-सी जिन्दगी गुजार रहा था। उनकी पत्नी उन्हीं के घर में नौकरानी का काम करती थी, यह वे प्रगट नहीं कर सकते थे।

उन्होंने लिखा था, "आप गुरुदेव हैं, पत्नी के प्राण बचाने के लिये आपके आदेश पर ही यह सब किया है। आप ही मुझे बतायें कि, उन्हें ग्रहण न करके मैं महापाप का भागी बना हूं कि नहीं। दूसरे जन्म में मुझे मुक्ति मिलेगी या नहीं। पर मैं उन्हें ग्रहण भी कैसे करूं ? मेरी गृहस्थी, मेरा वंश, इन समस्त बातों पर विचार करने के पश्चात् मैं उन्हें ग्रहण कैसे करूं मेरी समझ में नहीं आता। मैंने लोक-लाज के संस्कार के वशीभूत हो एक मां से उसका पुत्र छीन लिया। मां नहीं जानती कि उसका बेटा उसके इतना करीब है। आज ज़िन्दगी के अंतिम मोड़ पर पहुंचकर मैंने आपको यह पत्र लिखा है। मेरी अंतिम इच्छा यही है कि मेरी चल और अचल संपत्ति के दो भाग कर मेरी दोनों संतानों में बांट दी जाय। मेरी नज़रों में दोनों एक समान हैं। मेरे लिये दोनों पत्नियां ही मेरी धर्म-पत्नियां हैं। जब मैंने आपका आदेश मानकर एक और स्त्री को ग्र[illegible] किया था तो उचित यही था कि मैं उसे धर्मपत्नी [illegible]

पर मैंने ऐसा नहीं किया। अव सारा जिम्मेदारी मैं आपको ही सौंपकर जाता हूं। आपकी अदृष्ट गणनानुसार मेरी पहली पत्नी का जीवन सिर्फ वीस वर्ष ही है। वीस वर्ष वाद आप मेरी इस इच्छा, इस आदेश को प्रगट कीजियेगा। अन्यथा परलोक में भी मेरी आत्मा वेचैन-सी विचरण करती रहेगी।"

काफी लम्वा पत्र था।

गुरुपुत्र नीचे वाले कमरे में जाकर सो गये। मां जी सोच रही थीं, उनके पिता की मृत्यु हो चुकी है। निर्धारित समय में ही उन्होंने यह समाचार प्रगट किया है। इनका अपना जीवनकाल भी अव समाप्त होने को आया। मालिक की मृत्यु के पश्चात सिर्फ वीस साल जीवित रहने का विधान था। पर वीस साल पूरे होने के वाद भी वे जीवित हैं। तो क्या गरुदेव की अदृष्ट-गणना झूठी है!

मांजी एक वार फिर सिन्धु के पास गईं। सारा घर अंधकार में डूवा निस्तव्ध-सा हो रहा था। एक विल्ली पंजे दवाये इस कमरे से उस कमरे में जा रही थी। मा जी इतनी रात तक कभी भी जागती नहीं रही थीं।

उन्होंने फिर आवाज़ लगायी, "सिन्धु, अरी सिन्धु!"

सिन्धु हड़वड़ाकर उठ वैठी और वाली, "कहिये, मांजी।"

"एक वार मंगला को वुला सकता है?"

सिन्धु ने पूछा, "मंगला को? इतनी रात को? क्या खाना वनाना ड़ेगा?"

"नहीं, वस तू एकवार उसको वुलाकर ला दे।"

मंगला वहुत रात गए आई थी मांजी के पास। मांजी ने सिन्धु से कहा, "सिन्धु, जा तू अव सो। तुझे अव जागने की जरूरत नहीं है।"

मंगला को सिर्फ इतना पता है कि वह मांजी का चेहरा देखकर चौंक पड़ी थी। यद्यपि उसने मांजी को अधिक वार नहीं देखा था, फिर भी उस रात उनका चेहरा देखकर जैसे सचमुच ही चौंक पड़ी थी।

मांजी ने कहा, "बैठ।"

आज तक कभी भी मांजी के सामने बैठने का संयोग नहीं हुआ था। इस घर में मालिक के सामने बैठने का नियम ही नहीं है। यह बात सभी अच्छी तरह जानते हैं। फिर भी मंगला बैठ गई। बैठकर वह सिर झुकाए ही रही। गहरी नींद से जागकर आई थी वह। मांजी ने बुलाया है सुनकर वह और भी अवाक रह गई थी। शायद खाना बनाना होगा। गुरुपुत्र आए हुए हैं। उन्होंने खाना नहीं खाया है। खाना बनाने का सारा इंतज़ाम करके रखने के बाद भी उन्होंने खाना नहीं खाया। यह जानकर कि वे खाए बिना ही सो गए हैं वह भी सो गई थी। शिशु की मां भी बगल में ही सोई हुई थी। पर पुकार सुनकर उसे ऐसा लगा मानो कोई उसे सपने में पुकार रहा हो। मानो सचमुच ही वह स्वप्न देख रही हो।

मांजी ने उसका ध्यान भंग करते हुए कहा, "मेरे साथ काशी गई थी, याद है तुझे ?"

"याद है, मांजी।"

"वहां मैं बहुत बीमार हो गई थी, यह भी याद होगा तुझे ?"

"हां, वह भी याद है, मांजी।"

"मेरी बीमारी के दौरान तूने बड़े मालिक को देखा था ?"

मंगला यह बात सुनकर बुरी तरह चौंक पड़ी। चौंककर उसने मां-जी की ओर देखा और मांजी की नज़रों से नज़र मिलते ही वापस सिर झुका लिया उसने।

"बात का जवाब क्यों नहीं देती ?"

मंगला ने सिर झुकाए-झुकाए ही जवाब दिया, "वह तो बहुत दिनों पहले की बात है, मांजी।"

मां जी बहुत क्षुब्ध हो उठीं उसका जवाब सुनकर। बोलीं, "तू मेरे ही घर में बैठ, मेरा ही खा-पहनकर, मेरा ही सर्वनाश करने पर तुली रही ?"

मंगला फफक-फफककर रो पड़ी। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा वह चली।

मांजी ने कहा, "तू अच्छी तरह जानती है कि कितनी साध से बसायी हुई सुखी गृहस्थी है मेरी? उसी गृहस्थी में, मेरी दुनिया में, तूने आग लगा दी? अब मैं क्या करूं?"

"मेरे पति, मेरे वेटे, वेटे की वहू, क्या सभी को सिर्फ तेरे कारण तिलांजलि देनी पड़ेगी मुझे? तूने इतना भयानक सर्वनाश कैसे किया मेरा?"

"मांजी, मैं···"

"चुप, कलमुंही। गलती मेरी ही थी जो दूध केला खिलाकर मैं अपने घर में एक नागिन को पालती रही, इसीलिए तो तूने मेरे ऐसे हरे भरे संसार में आग लगा दी। नष्ट कर दी मेरी गृहस्थी। अब मैं क्या करूं? अब सिर पटक-पटककर मर जाने की इच्छा हो रही है मेरी।'

मंगला कटे वृक्ष की तरह मांजी के पांवों में गिर पड़ी। और वोली, "मांजी, विश्वास कीजिए, मेरा कोई कसूर नहीं है। मैं तो पेट की आग के वश हो आपके घर में मज़दूरी करने ही आई थी।"

मां जी ने कहा, "तो मैंने तुझसे कहा था न कि मालिक की नज़र में नहीं पड़ना?"

"मैं हमेशा ओट में ही रहती थी, मांजी।"

"तो फिर कैसे इतना वड़ा सर्वनाश घटित हुआ?"

"मेरे खोटे दिन आए थे मांजी, इसीलिए! आप मुझे इस घर से निकाल दीजिए मांजी, ताकि मैं मरकर मुक्ति पाऊं। अव जीवित रहने की कोई इच्छा नहीं मेरी।"

मांजी ने क्षण भर पता नहीं क्या सोचा। फिर वोलीं, "तूने अपने लड़के को कभी देखा है?"

मंगला आंखों पर आंचल ढंक ज़ोर से रो पड़ी। आखिर में वह अपने को संयत नहीं रख सकी। मंगला हरदम की दव्बू स्त्री है। अव

। संचित समस्त दुःख-कष्ट-शोक मानो आज अचानक फटकर आ जाना चाहता था।

ांजी चीख पड़ीं। बोलीं, "निकल अभागी, निकल यहां से। जा और हो सके तो गले में फंदा लगा ले। जा, चली जा मेरे से।"

घोर अंधकार में डूबा हुआ वह मकान। मकान के पोर-पोर में मृतात्माएं सजीव हो उठी हों उस रात। आधी रात के नाटक पर ायद वहीं यवनिका गिर चुकी थी। उसके पहले सिर्फ जरा-सा क्षण का विराम था। मंगला लड़खड़ाती-सी सीढ़ियों से उतरी। बाद उसने एक बार अच्छी तरह इधर-उधर देख लिया। उसे डर लगा। सीढ़ियों के पास टंगे तोते ने अपने पिंजरे में जोर से पंख फड़ाए। बिल्ली भी अपने को बचाने के लिए उसके पांवों के पास ोर से भागकर पता नहीं किधर भाग गई।

और उसके बाद···

उस वक्त पूरी तरह उजाला नहीं हुआ था। बल्कि रात ही थी। ात्तारण बाबू ने उस रात बहुत खाया था। मुर्गी के चॉप बने थे। सिर्फ र्गी के चॉप ही नहीं। टेंपी की मां बगानबाड़ी में आने से पहले चाट ी दुकान में पकाने का काम किया करती थी। उसके हाथ की बनी कड़ा की लहसुन-प्याज दी हुई सब्जी जिसने भी खायी है वह अब सके दुकान छोड़ देने पर अफसोस करता है। कहता, 'टेंपी की मां सा स्वादिष्ट खाना बनाती थी वैसा उसके बाद कभी नहीं खाया।'

उस वक्त टेंपी की मां की स्थिति बहुत बुरी थी। जगतारण बाबू ी कृपा से ही अब यहां पहुंच टेंपी की किस्मत पलटी है। बेलघरिया ी बाग-हवेली में वे लोग रहने लगे। टेंपी की मां की नाक में हीरे की लोंग चमकती है। टेंपी जड़ाऊ गहने पहनती है। अब इन लोगों को

बहुत सुख है।

उसी रात, रात के अंतिम प्रहर में न जाने कौन चीख रहा था।

"वड़े वावू, वड़े वावू !"

उस वक्त नफर को भी होश नहीं था। वहुत रात तक गाना-वजाना चलता रहा था। वहुत दिनों वाद अच्छा खाना नसीव हुआ था उसे। पेट भरकर खाया था उसने। मुर्गी के चॉप तो वार-वार मांगकर खाए थे। जगत्तारण वावू उसके पास ही वैठे खा रहे थे।

वे वोले, "खाओ नफर, खूव डटकर खाओ। आज खाने में शर्म मत करो।"

नफर ने कहा, "जी, मैं लाज-शर्म जानता ही नहीं। अगर शर्म करता तो मेरी यह दशा थोड़े ही रहती।"

वड़े वावू ने कहा, "मास्टर, मुर्गी के चॉप बहुत स्वादिष्ट वने हैं।"

जगत्तारण वावू ने कहा, "वड़े वावू, इसका वनाया खाना सचमुच वहुत स्वादिष्ट होता है। पहले होटल में पकाया करती थी।"

गुलमोहर अली और अब्दुल आदि ने भी पेट भर के खाया था। सिर्फ मुर्गी ही नहीं। टेंपी की मां ने कहा, "आज खाना वहुत जतन से नहीं वना सकी। अदरख अधिक पिस गई थी।"

नफर ने कहा, "पुलाव वहुत स्वादिष्ट वना है, मांजी।"

टेंपी की मां ही परस रही थी। वोली, "स्वादिष्ट कैसे बना होगा ...., असली घी तो अव मिलता ही नहीं। फिर मेरा वेटा आने वाला ..., सुनकर मक्खन तपाकर घी वनाया।"

"ओउमऽऽ!" जगत्तारण वावू ने वहुत ही संतुष्टि भरी डकार ली।

वोले, "खाना सचमुच वहुत स्वादिष्ट वना है, वड़े वावू। वड़े मालिक के साथ कितनी ही वार वेलघरिया में पहले भी खा चुका हूं।"

खाना समाप्त हुआ। खाना खाने से पहले गाना-वजाना भी हुआ था। टेंपी ठुमरी वहुत अच्छा गाती है। 'हमसे न वोल राजा' कह कर जव अदा से निहारती तो वाह, मज़ा आ जाता था। वाह, वह अदा भी

क्या अदा थी। उस अदा का ही तो लाख रुपये मोल है।

वड़े वावू ने कहा, "अव तेरे स्वर मैं सोने से मंढ़ दूंगा।"

नफर भी सुन रहा था। वोला, "वाह, भाभी जी का गाना सुनकर ही पेट भर जाता है।"

गाना हो रहा था उसी वीच मनसुखलाल ज्वैलर्स कम्पनी का दलाल वहां आ गया था। अदा की कीमत मानो उसी वक्त वसूल हो गई थी। नेकलेस देख कर टेंपी के चेहरे पर भी मुस्कराहट फैल गई थी।

उसके वाद जितनी रात अधिक होती गई उतना ही मज़ा भी अधिक आता गया। वड़े वावू जितना अधिक मना करते थे कि "वस आखिरी है, अब और नहीं" उतनी ही अधिक वोतलें खुलती जा रही थीं और खाली होती जा रही थीं। नफर ने भी छिप-छिप कर खूब चढ़ायी थी। अच्छी चीज़ थी। यह अगर पीने को मिल जाय तो किस्मत की वात है।

खाते-खाते जब सब कुछ समाप्त हो गया तो सभी सो गये। वड़े वावू चित पड़े थे बिस्तर पर। टेंपी की मां आकर टेंपी को बुला ले गई थी। वोली, "आ वेटी, भीतर चल, आराम से सो।"

टेंपी और टेंपी की मां अलग कमरे में ही सोयी थीं। टेंपी की मां को भी खूब नशा चढ़ा था।

अचानक वाहर शोर सुनते ही उसका नशा उतर गया।

वोली, "यष्टिचरण, जा देख तो रे, कौन पुकार रहा है?"

वाहर उस वक्त कोई दरवाज़ा खटखटा रहा था और साथ ही चिल्ला रहा था, "वड़े वावू, वड़े वावू!"

उस दिन वहुत सुवह उठ गये थे गुरुपुत्र। नल तले जा हाथ-मुंह धोकर माला जप, ध्यान आदि से निवृत्त हो लिये, क्योंकि उन्हें आज ही जल्दी जाना था।

पयमन्त को पुकार कर उन्होंने कहा, "अरे जा, एक बार मांजी को खवर दे कि मैं जा रहा हूं।"

उस वक्त सारा घर स्तब्ध था। गुरुपुत्र ने अपना सामान समेट लिया।

अचानक पयमन्त दौड़ता हुआ आया।

गुरुपुत्र ने पूछा, "क्यों क्या हुआ रे ?"

भीतर से सहसा सिन्धुमणी की ज़ोरदार चीख सारे मकान में गूंज गई।

"क्या हुआ रे ?"

"सर्वनाश हो गया, गुरुजी।"

यह सब वातें हमने बड़े होने के वाद सुनी थीं। असली भेद बाद में पता लगा था। पर उस वक्त हम कुछ नहीं जानते थे।

हम लोग उस वक्त छोटे थे। मोहल्ले के सारे लोग उस मकान के सामने इकट्ठे हो गये थे। लाल पगड़ीधारी कई सिपाही भी थे, और एक दारोगा था। इस मोहल्ले के इस मकान में पहले कभी पुलिस आते नहीं देखा। फिर भी इस घर के विषय में हमारी उत्सुकता बराबर बनी ही रहती।

"क्या हुआ, मिस्टर ?"

रास्ते चलते लोग पुलिस को देख वहीं रुक जाते, और पूछते, "क्या हुआ, मिस्टर ? यहां पुलिस क्यों आई है ?"

"सुना है, इस मकान में किसी ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है।"

"किसने की है आत्महत्या ?"

"पता नहीं किसने की है ? वड़े लोगों के घर का मामला है। भला जान भी कौन सकता है ?"

धीरे-धीरे भीड़ अधिक होती गई। धूप भी तेज़ होती जा रही थी। अगल-वगल के घरों में रहने वाले वावू लोगों का ऑफिस जाने का वक्त

था। कुछ तो ऑफिस चले भी गये।

अचानक गुलमोहर अली गाड़ी हांकता हुआ आया।

"हटो! हटो!" कह पुलिस ने लोगों को हटा गाड़ी आने का रास्ता बनाया।

वड़े वावू की गाड़ी आयी है। भीतर वड़े वावू एवं जगत्तारण वावू बैठे हैं। नफर गाड़ी की छत पर सामने की ओर बैठा है। गाड़ी रुकते ही नफर जल्दी से उतर पड़ा और गाड़ी का दरवाजा खोल कर बोला, "आइये साहव, उतर आइये।"

वड़े वावू के गाड़ी से उतरते ही दारोगावावू वड़े वावू के साथ मकान के भीतर चले गये। वाहर खड़े सभी लोगों का कौतुहल और वढ़ गया। हम लोग और करीब खिसक गये।

आज इतने दिनों वाद मैंने इस संकीर्तन का जो गायन किया है उसका भी एक कारण है।

इस वार दुर्गा-पूजा के दिनों मैं काशी गया था।

मैं दशाश्वमेध घाट पर बैठा था। अचानक नफर दिखाई दिया। वही मैली वनियान और फटी धोती पहने।

मैंने ही उसे आवाज़ दी, "नफर!"

नफर ने मेरी आवाज़ सुनते ही मेरी ओर देखा और मेरी तरफ वढ़ आया। वोला, "भैय्या, आप यहां!"

मैंने कहा, "पहले तुम वताओ कि तुम यहां कव आये?"

नफर ने कहा, "आपने शायद मकान वदल लिया है। क्योंकि अब आप उस मोहल्ले में दिखायी नहीं देते।"

मैंने फिर अपनी ही वात दोहरायी, "तुम यहां किसके साथ आये हो?"

नफर ने कहा, "जगत्तारण वावू के साथ। शायद आपने सुना हो

कि बड़े बाबू का देहान्त हो गया ?"

सुनकर मैं चकित रह गया। फिर बोला, "नहीं, मैंने यह बात आज तुम्हारे मुंह से ही सुनी है। कब हुआ देहान्त ?"

नफर बहुत-सी बातें बता गया। अपने अन्तिम दिनों में बड़े बाबू की तबीयत अधिक खराब रहने लगी थी। कुछ भी नहीं खाते थे।

कुछ देर बाद नफर ने कहा, "बड़े बाबू के मकान, चल-अचल सारी सम्पत्ति जगत्तारण बाबू ने खरीद ली, पता है आपको ?"

मैंने आश्चर्यचकित होते हुए कहा, "यह क्या कह रहे हो तुम ? क्या उन्हीं एटर्नी जगत्तारण बाबू ने ?"

आखिर यह सारा कुछ जगत्तारण बाबू ही हजम कर जायेंगे, इसका अनुमान मैंने पहले ही लगा लिया था। फिर भी यह खबर सुनकर मुझे दुःख-सा हुआ। मांजी ने अपनी बलि देकर संसार सेन के कुल की मर्यादा को अमर बनाये रखना चाहा था। साथ ही सुवर्णनारायण के भविष्य को भी निरापद करना चाहा था। पर पता नहीं किस तरफ से किन रंध्रों से शनि वहां प्रवेश पा जायेगा, यह बात काश वह जान पातीं।

मुझे याद है, पुलिस ने सिन्धुमणी से पूछताछ की थी, "तुमसे मांजी की आखिरी भेंट रात कितने बजे हुई थी ?"

सिन्धुमणी ने जवाब दिया, "हुजूर, उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं मंगला को बुलाकर सोने चली जाऊं। मैं उसे बुलाकर सोने चली गई थी। उसके बाद मुझे कुछ भी पता नहीं। सुबह उठकर ही यह कांड देखा मैंने।"

बहूजी भी रात-भर गहरी नींद में सोयी हुई थीं। वह भी रात को कुछ नहीं जान पायीं। बड़े बाबू ने बेलघरिया जाने के बाद मांजी को नहीं देखा था।

पुलिस एक-एक कर सभी से पूछ-ताछ कर रही थी।

मंगला से भी पूछा था, "तुम कितने दिनों से इस घर में काम कर

"मुझे याद नहीं कितने वर्षों से कर रही हूं, पर मैं बहुत छोटी उम्र
ही इस घर में काम कर रही हूं।"

"रात आखिरी मुलाकात के वक्त मांजी ने तुमसे क्या कहा था ?"

क्षण-भर को पता नहीं मंगला ने क्या सोचा और बोली, "मुझ पर
राज़ हुई थीं।"

"क्यों ? तुमने खाना अच्छा नहीं बनाया क्या इसलिए ?"

"नहीं, उन्होंने कहा था कि मैंने उनका बहुत बड़ा नुकसान किया
।"

"कैसा नुकसान ?"

मंगला ने कहा, "यह मुझे नहीं मालूम।"

"दुनिया में अपना कहने को तुम्हारा और कौन है ?"

"एक लड़का है।"

"वह कहां है ?"

मंगला ने जवाब दिया, "मुझे पता नहीं।"

इसके बाद पुलिस ने बड़े बाबू एवं जगत्तारण बाबू आदि सभी के
यान लिये थे। अन्त में नफर को भी बुलवाया गया।

पुलिस ने उससे पूछा, "दुनिया में अपना कहने को कोई है
म्हारा ?"

"जी नहीं, हुज़ूर।"

"तुम्हारे माता-पिता ?"

"नहीं, हुज़ूर। मैंने किसीको भी नहीं देखा। वे लोग कहां हैं, मैं
ो यह भी नहीं जानता।"

"इस घर में तुम क्या काम करते हो ?"

"हुज़ूर, मुसाहिबी करता हूं। मैं बड़े बाबू का मुसाहिब हूं। हुज़ूर
ब भी याद फरमाते हैं मैं उनके साथ जाता हूं।"

"कहां जाते हो ?"

"जी, वेलघरिया जाते हैं।"

नफर के वाद गुरुपुत्र को भी वुलवाया गया। आखिर उनका उस दिन लौटना नहीं हुआ।

पुलिस ने उनसे पूछा, "आप जव मांजी से अंतिम भेंट करके कमरे से वाहर आये उस वक्त कितनी रात वाकी थी?"

गुरुपुत्र ने जवाव दिया, "रात का दूसरा प्रहर था शायद।"

"उन्होंने आपसे क्या-क्या वात की थी?"

"वहुत-सी वातें की थीं।"

पुलिस ने फिर पूछा, "क्या उनका मन वहुत खराव था? वह वहुत दुःखी थीं?"

"हां।"

"आप इतने दिनों वाद अचानक पिछली रात को ही यहां कैसे आये?"

"मेरे पिताजी का मृत्यु-संवाद देने। मेरे पिताजी उनके गुरु थे। गुरुदेव पर वहुत श्रद्धा थी उन्हें।"

पुलिस ने पूछा, "खवर सुनकर क्या वह वहुत दुःखित दिखायी दे रही थीं?"

"हां वहुत अधिक। वह जमीन पर लोट-पोट हो रोने लगीं। उसके वाद वहुत रात होती देख मैं वहां से चला आया।"

"उसके वाद?"

गुरुपुत्र ने कहा, "उसके वाद खाना-वाना खाकर मैं अपने विस्तर में सो गया। मुझे तुरंत नींद आ गई थी, अतः रात को क्या हुआ यह मैं उस वक्त नहीं जान सका। सुवह ही इस घटना के वारे में सुना मैंने।"

पुलिस ने और भी वहुत-से प्रश्न पूछे थे।

सहसा नफर उठ खड़ा हुआ और वोला, "चलूं भैया, इधर जगत्तारण वावू के लिये रवड़ी खरीदने आया था। नींद से जागते ही अगर उन्हें तुरंत रवड़ी खाने को न मिले तो धुंआधार गाली वकने लगते है।"

उसकी बात सुन मुझे हंसी आई। मैंने कहा, "पर तुम्हारी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया नफर, तुम बिल्कुल पहले की तरह ही रह गये।"

"मेरा क्या भैया !"

कहकर मेरे साथ नफर भी हंसने लगा।

नफर बोला, "भैया मैं कोई उन लोगों की तरह किसी बड़े आदमी का बेटा तो हूं नहीं।"

इतना कह नफर चला गया।

अचानक मुझे ध्यान आया, मंगला के विषय में तो कुछ पूछा ही नहीं। तो क्या अब मंगला जगत्तारण बाबू के घर की रसोइन है ! कौन जाने !

पर मेरे कानों में नफर के वे शब्द गूंजने लगे, "मैं कोई उन लोगों की तरह किसी बड़े आदमी का बेटा तो हूं नहीं। मैं कोई उन लोगों की तरह किसी बड़े आदमी का बेटा तो हूं नहीं···।"